सफल जीवन

लेखक :

महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

प्रकाशक :

श्री ऋषि कुमार गुप्ता लक्ष्मी नगर, दिल्ली

एवम

श्री प्रियवर्त गुप्ता, सूरत निवासी

प्राप्ति स्थान :

वैदिक भक्ति साधन आश्रम, आर्य नगर, रोहतक ।

मूल्य : १०.००

|| ओ३म् ||

सफल जीवन

●

लेखक

स्व० श्री महात्मा प्रभु आश्रित महाराज जी

●

प्राप्ति स्थान :

वैदिक भक्ति साधन आश्रम, आर्य नगर, रोहतक

निवेदन

विदित रहे कि श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज की पुस्तकें किसी आर्थिक आय या व्यापार की दृष्टि से नहीं छापी जातीं केवल वेद प्रचार की भावना से सारा कार्य किया जाता है। न ही लेखक महोदय को और न ही प्रकाशक को किसी प्रकार की आर्थिक आय की इच्छा है, केवल धर्म प्रचार और मानवता को ऊपर उठाना ही उद्देश्य और लक्ष्य है। अतः पुस्तकों का मूल्य इसी भाव से न्यून से न्यून रखा गया है। फिर भी जो थोड़ी सी बचत होती है वह इसी कार्य में लगाई जाती है। सब सज्जनों से प्रार्थना है कि श्री महाराज जी लिखित पुस्तकें जो बहुत सरल रोचक और अनुभव के आधार पर लिखी हैं, सुन्दर और वास्तविक रूप में सस्ती हैं स्वयं पढ़ें और अपने इष्ट मित्रों तक पहुंचाकर जीवन को उन्नत करें और पुण्य के भागी बनें।

प्रकाशन विभाग

वैदिक भक्ति साधन आश्रम, आर्य नगर, रोहतक

!! ओ३म् !!

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न प्रचोदयात्
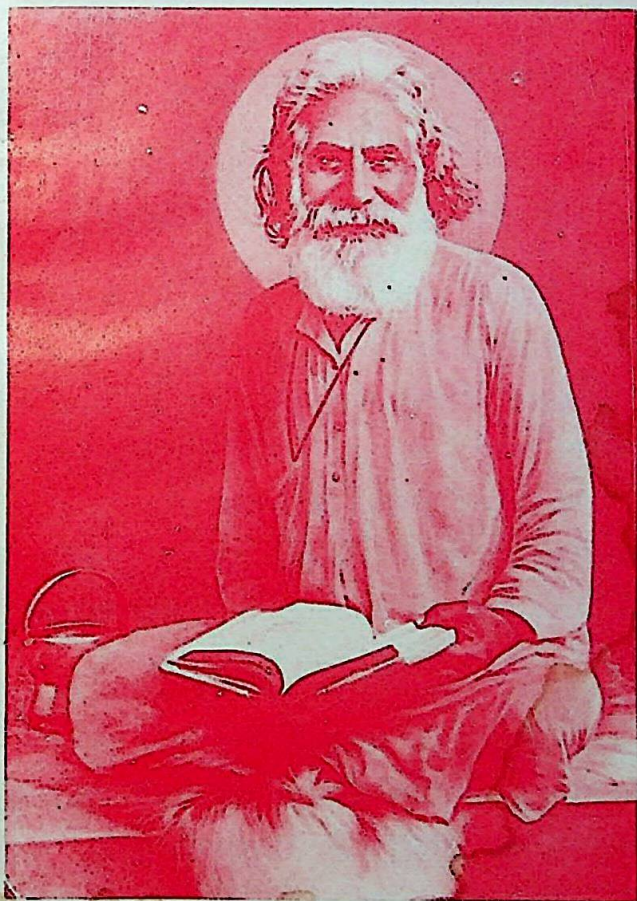
श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

★ ओ३म् ★

१-४-४० प्रातः ६-३५ सोमवार २० चैत्र कृष्णा नवमी
सं० १९९६ वि०

अग्नि और धनी तीन प्रकार के

अग्नि से तीन प्रकार की चिन्गारी उड़ती हैं एक तो बाहर किसी वस्तु पर पड़ते ही आँखों देखते ही देखते क्षणों में स्वयं बुझ जाती है। दूसरी चिन्गारी बाहर पड़कर अपने ऊपर भस्म का फुल्ला बना देती है तथा जब कोई यह समझ कर हाथ लगाये कि भस्म है, तुरन्त अन्दर की छिपी अग्नि उसे जला देती है। तीसरी चिन्गारी जहाँ पड़ती है, उस वस्तु में प्रवेश करके उसे जगा करके और बढ़ती बढ़ाती जाती है।

ऐसे ही धनी भी तीन प्रकार के होते हैं। एक तो लाखों रुपये कमाते हैं और थोड़े काल में ही कंगाल हो जाते हैं, आंखों के सामने ही। किसी को लाभ नहीं पहुंचाते तथ हानि भी नहीं करते। परन्तु अपना जीवन खो बैठते हैं चिन्गारी के बुझने की भान्ति। दूसरे धनी बड़े

भयानक होते हैं। मीठे बनकर सबको डसते हैं, जलाते हैं जो इनको देखे। बड़े नरम, कोमल भस्म (राख) के समान दिखाई देते हैं। जिसने संग किया, वास्तविकता प्रकट हो गई।

तीसरे धनी हैं वास्तविक धनी। वे जिसमें प्रवेश करते हैं, उसे उन्नत कर देते हैं।

४–४–४० प्रातः ७–१५ बृहस्पतिवार २३ चैत्र कृष्णा द्वादशी सं० १९९६ वि०

सेवा तीन प्रकार की

पवित्रता शुभ कर्मों के करने से मिलती है। शुभ कर्मों के करने से ही अन्तःकरण पवित्र हो सकता है। पर मनुष्य अपनी प्रकृति, अपनी भावना के अनुकूल ही शुभ कर्म करता है, तथा उसी के अनुकूल उसे फल मिलता है। तमोगुणी–वृत्ति मनुष्य तो शुभ कार्य इसलिए करते हैं कि उसकी आड़ में वे धन कमावें। एक व्यक्ति बहुत साधु सेवा करता है, उनको दान पुण्य करता है। सत्संग में दान करता है। छबीलें 'प्याऊ' लगवाता है और भी दीन दुःखियों की सेवा करता है। अन्दर मन में यह भावना है कि लोग उसे धर्मात्मा समझ कर उसके पास आवें उससे

सौदा लेवें, उससे लेन देन करें। ग्राहक, मुवक्किल, रोगी उसके पास बहुत आवें। दूसरे राजसिक वृत्ति के हैं। वे इसलिए सेवा करते हैं कि उनका यश हो। जहां जावें लोग मान करें। उत्सवों मे, जलसों में, कम्पनियों में उनको मान मिले। प्रधान पद मिले।

तीसरे हैं सात्विकवृत्ति के जो केवल अन्तःकरण के पवित्र करने के लिए सेवा करते हैं। दीन–दुःखियों की दुःख–पीड़ा सह नहीं सकते। मानवी सहानुभूति के भाव से द्रवित हो जाते हैं। ऐसे मनुष्यों के हृदय पवित्र हो जाते हैं। ये ही प्रभु के समीप और प्राणीमात्र के प्रेम–पात्र बन जाते हैं। अन्य प्रकार के भावों वाले व्यक्तियों के अन्तःकरण शुद्ध नहीं होते, न हो सकते हैं। इसी प्रकार लोक व्यवहार में संसारी मनुष्य बड़ा (चौधरी) बनने या बड़ा बनने वाला बड़े–२ अफसरों से मेल–जोल रखता है। तामसिक वृत्ति वाला तो लोगों में अपना सेब दाब जमाने के लिए मेल–जोल रखता है, कि लोग उससे डरते रहें, और उसके काम लोग स्वयं ही कर देते रहें। दूसरे राजसिक वृत्ति के, मेल–जोल इसलिये रखते हैं कि जब वे अफसरों के जावें, तो लोगों के समक्ष अफसर उनकी प्रतिष्ठा करें और कुर्सी पर बिठावें, हाथ से हाथ

मिलावें, और खुशी–खुशी बोलें। उनकी भावना न लोगों को रोब दिखाने की है, न लोगों से काम निकलवाने की। तीसरे हैं सात्विक, जो अफसरों से इसलिये मेल–जोल रखते हैं, और घर से खर्च करते हैं, अपने पर बोझ डालते हैं कि वे निर्धनों, पीड़ितों की सहायता कर सकें। उनको दुःख से बचा सकें। लोगों के अधिकारों की रक्षा कर सकें।

३–४५ प्रातः

५–४–४० शुक्रवार सं० १९९६ वि०
२४ चैत्र, त्रयोदशी कृष्णपक्ष जतोई में यज्ञ निमित्तव्रत

कर्म का फल भाव अनुसार

कोई भी कर्म कैसा ही शुभ या ऊंचा अथवा नीचा क्यों न हो, कर्त्ता के भाव उसे नीचा या ऊंचा दर्जा देते हैं। छोटा काम भी भाव के प्रताप से बड़ा काम बन जाता है, प्रतिष्ठा योग्य बन जाता है। झूठे बर्तन उठाना या मांजना या शौचमल 'विष्ठा' उठाना, साफ करना एक अतीव नीच कर्म है। परन्तु जब इन नीच कामों को पवित्र भाव, या भावों की पवित्रता से अपनी नि–र्मान–ता

(मानशून्यता) और संसार के कल्याण के लिए किया जाता है, तो वह बहुत ही ऊंचा दर्जा पा लेता है। स्वतः ही न कोई कर्म नीच है, न श्रेष्ठ। उसे भावना ही श्रेष्ठ, उत्तम अथवा नीच बनानें वाली हुआ करती है।

उन्नति के साधन १०—४५ दिन के

बीज गर्भ में बढ़ता है। बच्चा खेल में बढ़ता है। कुमार विद्या से बढ़ता है। नवयुवक पुरुषार्थ से बढ़ता है। अधेड़ व्यक्ति तप से बढ़ता है। बूढ़ा (वृद्ध) विचार से बढ़ता है। बढ़ने या उन्नति के ये ही साधन हैं।

पवित्रता १—१५ मध्याह्न

पुरुष का व्यवहार पवित्र हो, और स्त्री का आचार पवित्र हो, तो वह गृहस्थ अपना उत्थान और संसार का कल्याण कर सकते हैं। सन्तान सच्चरित्र और सुपुत्र कहलाने वाली पैदा कर सकते हैं।

नौजवानी और सावधानी ३बजे दिन

नौजवान के लिए सबसे अधिक नाजुक और सावधानी के योग्य समय वह होता है जब कि उसके विवाह की

तिथि निश्चित हो जावे। उस तिथि और विवाह की तिथि के मध्यकाल में नौजवान के मन पर विशेष तरंगें दौड़नी आरम्भ हो जाती हैं। आजकल के युग में, जब कि पाशविक भावनाओं का जोर है, दिन रात और विशेष रूप से एकान्त में, गृहस्थ के परमाणुओं की उत्पत्ति और आयात अधिक होता है, नौजवान कई बार इन भावनाओं में शेखचिल्ली की हवाई–कल्पनाओं में बह जाता है जिससे वह अनेक बार वीर्यपात के रोग में ग्रस्त रहता है। नौजवान को इस समय को बहुत पवित्र जानना चाहिए और इन्द्रियों का भारी संयम करना चाहिए तथा बड़ी पवित्र भावनाओं से प्रार्थना करनी चाहिए प्रभु से–बल और सहायता के लिए याचना करनी चाहिए, तथा अधिकाधिक प्रभु की शरण लेनी चाहिए।

७–४–४० रविवार ७–१५ प्रातः
२६ चैत्र, अमावस चैत्र कृष्ण पक्ष सं० १६६६ वि०

मनुष्य की पूर्णता

दो वस्तुएं सर्व–संसार में सहसा फैल सकती हैं– एक अग्नि, दूसरा मनुष्य। मनुष्य अपने गुणों से 'भूः भुवः

स्वः' तीनों लोकों में विख्यात हो जाता है। कोई वस्तु सहसा और कम मूल्य से नहीं भर सकती। अग्नि—प्रकाश के बिना। मनुष्य भी सर्व संसार में भरपूर होने के लिए आया है। बच्चा मातृगर्भ में भरपूर बन जाता है—तब बाहर आता है—तो काम का। यदि अधूरा निकले तो बेकार। ऐसे ही जो मनुष्य संसार में भरपूर फैल जाता है—उसका आगमन सफल, जो अधूरा गया, वह बेकार।

६—४—४० मगलवार ४—५० सायम्

२८ चैत्र, शुक्ला—प्रतिपदा १९९७ वि.

मनुष्य की दो शक्तियां

मनुष्य दो शक्तियां संसार में दूसरों को अपने पर मोहित करने की रखता है। एक वक्तृत्व शक्ति, दूसरा अपना अनुभव (ज्ञान)। किसी की तो बोलने की बड़ी सामर्थ्य होती है। पर ज्ञान अपना नहीं, उधार लिया होता है। किसी का ज्ञान (अनुभव) होता है—पर बोलने की शक्ति नहीं होती। जिसे ये दोनों शक्तियां प्राप्त हों—वह बड़ा सौभाग्यवान है। उस पर प्रभु की दया होती है।

१०–४–४० बुधवार ६–१५ प्रातः
२६ चैत्र, द्वितीया (१९६७) वि.

अन्तःकरण की शुद्धि

जिस निर्जीव वस्तु की मुरम्मत–शोधन–पालिश की जाती है, जितनी पालिश होती है, उतनी उस वस्तु की कीमत और आयु बढ़ जाती है। ऐसे ही जिस मनुष्य के अन्तःकरण की शुद्धि (पालिश) होती रहती है–उस मनुष्य की कीमत और आयु बढ़ जाती है।

११–४–४० बृहस्पतिवार ५ बजे लगभग
३० चैत्र, तृतीया शुक्ल पक्ष सं० १९६७ विं.

नव वधु को आशीर्वाद

विवाह हो जाने के बाद डोली जब घर में आवे वधु गृह द्वार पर आवे, तो उसका स्वागत घर की देवियां, सास आदि बड़े मीठे, प्यारे उमंग भरे हृदय से वधु को कहें–"प्रभु करे–तेरा यह पग हमारे गृह में भाग्यशाली हो। तू हमारे घर को पवित्र करने वाली हो, तेरे दायें पग में बरकत (सौभाग्य) हो और तेरे बायें में हरकत (क्रिया)

और शिरकत (सहयोग) हो।" घर में आई अतिथि–देवियां जेठानियां और ननद आदि उसे शोक–युक्त न होने दें। अपने घर के बड़े स्वामी ससुर–पिता, सास आदि की वह एक–एक करके प्रशंसा सुनावें और उसे आश्वासन देवें कि इस घर में तुझे कोई कष्ट न होवेगा तथा तू बड़े भाग्य वाली है–ऐसे घर में आई है। हम सदा तेरा साथ देने वाली होंगी। तू हमारे वंश की मर्यादा के अनुकूल चलने वाली रहना।

१३–४–४० शनिवार ७ बजे प्रातः

२ बैशाख, षष्ठी शुक्ला सं० १६६७ वि.

प्रारब्ध कर्म

संयुक्त परिवारों में साहूकार लोग भाई, चचेरे पुत्र आदि सब मिलकर काम करते हैं। व्यवहार में जब बढ़ते हैं तो जो भी काम करता है वह अपने–अपने स्थान पर अपने आप को ही सौभाग्य का साधन समझता है कि मैंने कमाया है, मेरे द्वारा इतना धन प्राप्त हुआ है। अतः इस सारे वंश (परिवार) में मेरा ही ऐश्वर्य (सौभाग्य) है। यह ऐश्वर्य दो प्रकार का होता है पूर्व कर्म–अनुसार। एक तो वह है कि सचमुच एक ही व्यक्ति का सौभाग्य होता है शेष सब उसके संग में रहने से कमाते हैं, और सभी

भाग्यवान् कहलाते हैं। परन्तु उसकी पहचान तब होती है कि कौन वस्तुतः भाग्यवान् था—जब वह व्यक्ति मध्य से हट जाता है अथवा स्वर्गवासी हो जाता है तो वह अपना सौभाग्य साथ ले जाता है। पीछे उसका कमाया हुआ धन भी विदा हो जाता है तथा पुत्र, भाई, भागीदार सब हानि उठा बैठते हैं अब उन्हें तथा लोगों को भाग्यवान् का पता लगता है कि कौन इन में भाग्यवान् था। दूसरे वे हैं कि वे भी ऐसे ही सब के सब अपने आप को भाग्यवान् मानते हैं पर उनका सौभाग्य संगठित रहने के कारण से होता है। जब वे पृथक्–२ हो जावें, तो सब के सब अपने स्थान पर हानि उठाते हैं कुछ कमाई नहीं कर पाते। जैसे चाकू का मूल्य एक रुपया है। यदि लकड़ी की डंडी पृथक् हो जावे, और लोहे का फल पृथक्, तो दोनों का मूल्य एक–एक कौड़ी भी नहीं रहता। परन्तु जब मिले हुए थे तो एक रुपया मूल्य पड़ता था। ऐसे ही सम्मिलित लोगों का सौभाग्य होता है।

१६–४–४०   मंगलवार   ७–४५ प्रातः

५ बैशाख, नवमी चैत्र शुक्ला

नमन दो प्रकार का

नमन दो प्रकार का होता है। एक तो अपने स्वार्थ

के लिये या भय से। यह झुकना तो पशु का झुकना है परतन्त्रता का, दासता का। दूसरा झुकना (नमन) होता है श्रद्धा, आदर से, संकल्प से। यह झुकना मनुष्यों का झुकना है। इससे जितना अधिक नमन होता है उतनी अधिक प्रसन्नता, खुशी तथा संगठन बढ़ता है। प्रथम में तंगी और विवशता अधिक होती है, घृणा एवं ग्लानि बढ़ती है।

२१–४–४० रविवार ८ बजे प्रातः
१० बैशाख, चतुर्दशी चैत्र शुक्ला सं० १९९७ वि.

सीमन्तोन्नयन संस्कार

सीमन्तोन्नयन संस्कार में सीमन्त+उन्नयन पांच ज्ञानेन्द्रियों की सन्धि के समीप पहुंचाना। यह स्थान तालु रन्ध्र, मूर्धा ज्योति का स्थान है। मांग निकालते समय गर्भिणी को हर समय ज्योति का, प्रकाश का ध्यान करना चाहिए, जिससे गर्भ–शिशु के तालु–रन्ध्र में ज्योति का प्रभाव पड़े। यदि गर्भिणी एकाग्रचित हो, एवं पवित्र अन्तःकरण की शुद्ध भावना से घी में देखने का प्रयत्न करे तो जैसा मन्त्र आदेश करता है तो उसे पति की प्रजा, पशु, सौभाग्य और आयु का ज्ञान–भान हो सकता

है। कई जीव गर्भ में ऐसे आते हैं कि निर्धन कंगाल माता-पिता, जिनको रोटी न जुटती थी, बच्चे के आने पर सौभाग्यशाली हो जाते हैं। घर धन-धान्य से सम्पन्न होने लग जाता है। दिन प्रतिदिन उन्नति होती जाती है, तथा कई जीव ऐसे आते हैं जिनके आने पर नाना प्रकार के संकट धन, पशु सौभाग्य का वियोग होने लगता है। माता-पिता मर जाते हैं। गर्भिणी माता बहुत सावधान रहने वाली हो तो अपने संस्कारी अथवा कुसंस्कारी बालक के भविष्य की घटनाओं से परिचित हो सकती हैं जैसें क़ि मन्त्र का दूसरा भाग (ऋग्वेद मंडल २ सूक्त ३२ संस्कार विधि सीमन्तोन्नयन संस्कार) कहता है।

ओ३म् ताभिर्नों अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोष सुभगेर राणा। प्रजां पशून् सौभाग्यं मह्यं दीर्घायुष्ट्वं पत्युः पश्यामि।

२२-४-४० सोमवार ५-१५ प्रातः
११ वैशाख, पूर्णमासी चैत्र शुक्ला सं० १६६७ वि.

कथनी करनी एक

जिस कर्म या जिस वस्तु का मनुष्य या समाज (सम्बन्धित) स्वयं प्रतिष्ठा करता है दूसरे भी उसकी

प्रतिष्ठा करते हैं। जिस वस्तु का ढिंढोरा तो पीटा जावे और उसे क्रियात्मक रूप में अपनाया न जावे, उसका दूसरे पर न प्रभाव पड़ता है, न उसे कोई अपनाता है। उदाहरण के रूप में—आर्य समाज मन्दिरों में आर्य समाजी स्वयं बूट—जूते ले जाते हैं. दूसरे भी इस मन्दिर को मन्दिर की शान से पवित्र नहीं देखते, तथा जूतों समेत चले आते हैं ठाकुरद्वारों—गुरुद्वारों में, मस्जिदों में, जहां उनके पुजारियों और अनुयायिओं की भावनाएं इनको भगवान का मन्दिर बनाए हुए होती हैं, तथा वे मान—मर्यादा से (पवित्र हो के) जाते हैं। वहां दूसरे भी इस भावना से प्रभावित हो जाते हैं। उनके मन्दिरों की ईंट—२ ऊपर और नीचे उनकी भावनाओं की बाड़ लगी हुई रहती है, तथा वही रक्षा करती है। मुसलमान लोग अपनी पुस्तक 'कुरान शरीफ' का सिक्ख लोग 'गुरुग्रंथ साहिब' का जिस भाव से मान करने हैं—नीचे नहीं रखते, फैंकते नहीं, ऊपर मान से रखते हैं, और सब वस्तुओं से अधिक आदर—प्रेम का स्थान देते हैं वहां दूसरों को भी वही मान—प्रतिष्ठा करती पड़ती है। परन्तु जो सोसाइटी अपनी पुस्तकों को बेपरवाही से फैंकती किसी एक दूसरे को बेपरवाही से देती और रखती है—उनकी पुस्तक का कोई भी आदर नहीं करता। अतः आवश्यकता है कि जिस भी

कर्म को मनुष्य करना चाहता है—उसे अपना लेवे, तभी दूसरे उसे अपनायेंगे।

२३—४—४० मंगलवार ३—४५ सायं
१२ वैशाख, कृष्णा प्रतिपदा सं० १९९७ वि.

कर्म के साथ भक्ति आवश्यक

टांगा चलते—चलते (कर्म करते—करते) उसके पहिए तप जाते हैं तो कोचवान उन्हें जल से ठंडा करता है। तब वह फिर कर्म करने के योग्य होता है। ऐसे ही कर्म करने वाला मनुष्य भी जो लगातार कर्म ही कर्म करता रहता है—उसे भी अभिमान की गर्मी तपा देती है। तब उसे प्रभु भक्ति के प्रेम जल से ठंडक शान्ति मिल सकती है। अन्यथा वह पहिये की भांति जल जायेगा।

२४—४—४० बुधवार ५—४० प्रातः
१३ वैशाख, द्वितीया कृष्णा सं० १९९७ वि.

परोपकारी में दिव्य-स्वभाव आवश्यक

परमात्मा ने सब सृष्टि मनुष्य के उपकार के लिए रची है। मक्खी और मच्छर भी मनुष्य की भलाई के लिए पैदा हुए हैं। वे भी उपकार करते हैं, पर वे अपने

दुष्ट स्वभाव से, जिस मनुष्य की भलाई करते हैं, उसी को डसते और विष–युक्त करते हैं। अतः वे शत्रु समझे जाते हैं, तथा मारे और कुचले जाते हैं। ऐसे ही वे मनुष्य, जो दुंष्ट स्वभाव हैं, दुर्जन हैं, यद्यपि कितने ही उपकारी क्यों न हों–वे भी मार खाते हैं। परोपकारी के अन्दर जब तक दिव्य गुंण और दिव्य–स्वभाव न हों, वह परोपकारी और सेवक नहीं समझा जाता है।

२–५–४० बृहस्पतिवार ५–१५ सायं
२१ वैशाख, दशमी कृष्णा पक्ष सं० १९९७ वि.

मन दूरदर्शी है

ओं यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दुरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मेमनः शिव संकल्पमस्तु।

यंजु० ३४/१

मन एक ऐसी ज्योति है, जो स्वयं ज्योति है। अन्य किसी की सहायता के बिना ही, अपने प्रकाश में जागती और जगाती है। जागृत अवस्था में भी दूर–२ तक (मन) पहुंचता है, तथा स्वपन में भी। इससे अभिप्राय यह है कि जागृत (व्यावहारिक) अवस्था में बहुत दूर–२ को संभाल

रखता, और धारण करता है, दूर की सोचता है, तथा स्वप्न (आध्यात्मिक) अवस्था में भी इसकी शक्ति इतनी है कि सैंकड़ों वर्ष भविष्य की सोचता है, और दूर–२ तक खराबियों को दूर करने के लिये चेतावनी देता है। जागृत (व्यावहारिक) अथवा स्थूल होती है, बाह्य–व्यवहार की होती है, तथा स्वप्न (आध्यात्मिक) अवस्था सूक्ष्म और आन्तरिक व्यवहार की होती है। अतः वेद भगवान् ने इस मन की बड़ी प्रशंसा की है कि यह मन केवल व्यवहार में ही निपुण नहीं अपितु आध्यात्मिक जगत् में भी बड़ा दूरदर्शी है, दूरगामी है।

५–५–४० रविवार ४ बजे प्रातः

२४ वैशाख, त्रयोदशी कृष्णा पक्ष सं० १९९७ वि.

रुग्णता और निर्बलता

दो वस्तुएं मनुष्य के लिये हानिकारक हैं—एक रुग्णता, दूसरी निर्बलता। ये दोनों शरीर मन के लिए पृथक्–पृथक् हैं। शारीरिक रुग्णता और निर्बलता धन (अर्थ) और काम को हानि पहुंचाती है, तथा मानसिक रुग्णता और निर्बलता, धर्म और मोक्ष में बाधक है।

अपने आप में (आत्म–केन्द्रित) या अपने में आप (आत्म–तुष्ट) रहना, इसका नाम है स्वास्थ्य, तथा यही सुख है, जिसकी प्रत्येक प्राणी इच्छा करता है; और अपने में किसी परायेपन का प्रविष्ट हो जाना–रुग्णता कहलाती है। तथा अपने में परायेपन को प्रविष्ट न होने देने का और उसके प्रतिरोध न कर सकने का नाम निर्बलता है। जो लोग पाप नहीं करते, उन्हें किसी भी प्रायश्चित् की आवश्यकता नहीं रहती। प्रायश्चित् करना पड़ता है, या उन्हें करना चाहिए–जो पाप करते हैं। शरीर में रोग या व्याधि का हो जाना यह परांश है। अपनेपन की तुलना से यह रुग्णता है। बच्चा माता के गर्भ में जब तक रहता है–स्वस्थ रहता है, वह अपने आप में रहता है। जो लोग (पुरुष या स्त्रियां) काम नहीं करते, आराम से लेटे रहते हैं चक्की, चरखा नहीं चलाते, भोजन नहीं बनाते, घर का काम–काज नहीं करते, न चारपाई उठाते, न बिछौना तक बिछाते हैं, यह उनका शारीरिक पाप है। इसलिये इस पाप का प्रायश्चित् है व्यायाम। जो लोग श्रम करते रहते हैं–उनसे दिन भर में कई प्रकार के आसन हो जाते हैं। पर जो जीव श्रमी नहीं–उनके लिए आसन और अन्य चक्की आदि घरेलु काम भी आवश्यक हैं।

८ बजे लगभग प्रातः

सुख और धर्म की कुंजी : स्त्री

सुख और धर्म को स्थिर रखने वाली. या सुख और धर्म की स्थिरता स्त्री जाति के अधीन है। जिस देश, जाति या परिवार की देवियां धर्म पूर्वक अपने घर का काम–काज करती हैं–उनकी जनता सुखी रहती है। शरीर को सुख–अन्न से, अन्न की पवित्रता से मिल सकता है–वे अन्न की पाचिका हैं। आत्मा को सुख मिलता है–ज्ञान से। मातायें ज्ञानवती हों–तो सबको सुख मिल जावे।

१०–४५ प्रातः

बल मां से, और यश स्त्री (धर्मपत्नी) से प्राप्त होता है।

६–५–४० सोमवार ६ प्रातः
२५ वैशाख, चतुर्दशी कृष्णा सं० १६६७ वि.

द्रव्य धन और नाम धन की महानता

दो वस्तुओं से मनुष्य कभी तृप्त नहीं होता। भक्त

तो नाम–दान (भक्ति) से नहीं तृप्त होता। कहता हैं–'अभी थोड़ी है और चाहिए, और चाहिएं'। तथा धनवान संसारी मनुष्य धन से नहीं भरता। वह भी 'और और' करता है। मनुष्य एक समय में अन्न खा कर बस कर देता हैं। मैथुन करने पर भी हार जाता है। एक समय बहुत कपड़े पहनना भी छोड़ देता है। पढ़ते–पढ़ते भी आराम लेना चाहता है–आंख लग जाती है, मस्तिष्क जवाब दे देता है। परन्तु धन से मनुष्य कभी नहीं तृप्त होता। सारा दिन ही उसे धन आता रहे, वह लेता ही रहेगा। इसका कारण?

धन तो आवश्यकताओं, जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं का 'प्राण' है एवं भक्ति आत्मा का प्राण है। जैसे शरीर सब भोग की वस्तुओं से थक जाता है या तृप्त हो जाता है, और बस कर बैठता है। परन्तु प्राण को चौबीस घण्टे और प्रतिक्षण लेता ही रहता है। कभी इसके ग्रहण को निन्द्रा में भी नहीं त्यागता अन्यथा मुत्यु हो जावे। इसलिये धन और नाम (प्रभु का) सम्पूर्ण आवश्यकता पूरक होने से बहुत प्यारे लगते हैं।

११ बजे

अच्छा कौन ?

प्रश्न–क्या वह आदमी अच्छा है–जो भले काम

करता है और प्रभु भक्ति नहीं करता ? या वह अच्छा है जो भक्ति करता है और भले काम नहीं करता ?

उत्तर—आजकल के बहुत से युवक (नई रोशनी) से चुंधियाए हुए मस्तिष्क वाले ऐसे प्रश्न करते हैं। वे कुछ सच्चे भी हैं और कुछ बहाना भी चाहते हैं। सच्चे तो इसलिये हैं कि वे जिस भक्ति करने वाले को भक्ति के बाद वैसे ही छल—कपट का व्यवहार करते देखते हैं—तब उनका प्रभु भक्ति से विश्वास उड़ (उठ) जाता है। तथा बहाना भी कोई ढूंढ़ते हैं कि ऐसा कहने से उनको नास्तिक न कहें और उनकी जान भी छूटी रहे—प्रभु भक्ति करने से। परन्तु वास्तविकता को जानने वाले मनुष्य को निम्नलिखित गुर का ध्यान कर लेना चाहिए। 'जहां भलाई का काम है, वहां प्रभुभक्ति भी एक भलाई है, भला काम है।'

१. सच्चे हृदय से प्रभु का धन्यवाद गाना, कि उसे प्रभु ने यह मानव शरीर दिया है, इसमें प्रभु बल देवें कि वह मानव जन्म का उद्देश्य जानकर अपना कर्त्तव्य पालन कर सके। अर्थात् प्रभु की प्रजा की सेवा (भला काम) कर सके। जो ये दोनों काम करता है—प्रभुभक्ति भी और शुभ कर्म भी, वह प्रथम नम्बर पर है।

२. जो प्रभुभक्ति बिल्कुल नहीं करता और दिन रात शुभकर्म करता है (कर्त्तव्य जान कर) वह दूसरे नम्बर पर है।

३. जो प्रभुभक्ति हृदय से करता है, पर शुभ कर्म नहीं करता, वह तीसरे नम्बर पर है।

४. जो प्रभु भक्ति दिखावे के लिए करता है, और शुभ कर्म भी दिखावे का, वह चौथे नम्बर पर है।

१. इसके अतिरिक्त जो मनुष्य भक्ति इसलिये करता है कि उसके पाप, जो वह प्रतिदिन करता है, उसका कुछ उतारा होता रहे। एवं वह पाप छोड़ना भी नहीं चाहता– वह अनुत्तीर्ण हुओं में प्रथम नम्बर पर है।

२. जो व्यक्ति प्रभु भक्ति लोगों में विश्वास जमाने के लिए करता है, तथा इसी आड़ में लोगों को ठगता है। पाप मक्कारी छल करता है, वह अनुत्तीर्णों में दूसरे नम्बर पर है।

३. जो व्यक्ति दिन रात पाप ही पाप करता है और प्रभु के नाम क्षण भर भी वास्ता नहीं रखता पाप में लीन रहता है, वह अति अधम है।

नई रोशनी वालों को सदा आदर्श जीवन वाले को अपने सामने रखना चाहिए, और उसी से अपने आचरणों का माप–तोल करना चाहिए। दिन रात परोपकार करने के लिए ईश्वर से सहायता (नित्य प्रार्थना रूप में) मांगनी, एवं शरीर से किए हुए काम पर प्रभु का धन्यवाद कर देना–यही उनकी प्रभुभक्ति है। जो व्यक्ति नित्य प्रति प्रभु भक्ति करता है, पर शुभ कर्म प्रतिदिन नहीं करता, वह उस व्यक्ति से फिर भी अच्छा है, जो शुभ कर्म कभी–कभी करता है– पर प्रभु भक्ति कभी नहीं करता। मनुष्य को थोड़ा बहुत देश, काल, और अपनी शक्ति के अनुसार नित्य प्रति शुभ कर्म करना चाहिए। अतः जो व्यक्ति प्रभु भक्ति नित्य करता है–वह एक शुभ कर्म करता है। तथा जो शुभ कर्म–उपकार का भी नित्य करता है– वह दो शुभ कर्म करता है। जिस व्यक्ति ने जिस दिन ये दोनों काम नहीं किये–वह समझे कि आज मुझ में जीवन प्राण नहीं रहा, मुर्दा हूं। जो एक शुभ कर्म करे (चाहे भक्ति, चाहे सेवा–उपकार) वह अपने आपको अधमरा जाने। तथा जो दोनों करे वह जीवित अपने को जाने। ऐसा विचार रखकर कर्म करने वाला ऊंचा जीवन बिताता है।

१२–५–४० रविवार ६ बजे प्रातः
३१ बैशाख, पञ्चमी शुक्ला सं. १६६७ वि.

निरुत्साह के कारण

स्थान–स्थान पर बाल–समूह खेल रहे हों–पर एक बालक, उनकी आयु का, चुपचाप बैठा हो, उधर जाने को उसका मन ही न करे, तो यही कहना पड़ेगा–'वह अवश्य रोगी है, निर्बल है, उठकर आ नहीं सकता न खेल सकता है'।

आग लग रही हो, तथा नवयुवक दौड़े–दौड़े जा रहे हों और बुझाने में खूब लगे हों, पर एक युवक चुप साधे बैठा हो, जाए ही न तो यही कहना पड़ेगा,'या तो वह रोगी है–या भीरू है, उसे अपने शरीर का बड़ा मोह है, अथवा स्वार्थी है, अपने धन, काम का बहुत प्यासा है, दूसरे के दुःख की परवाह नहीं करता।'

बूढ़े विचार कर रहे हैं–लोगों के हित के लिये। पर कोई बूढ़ा बेपरवाह है, वह उनमें सम्मिलित ही न हो, तो अवश्य जानना (मानना) पड़ेगा– कि उसमें कोई दोष है।

ऐसे ही जब सब स्थानों पर, सनातन–धर्मी, सिक्ख,

मुसलमान अपने–अपने मन्दिर–मस्जिदों में जनता में खूब प्रचार कर रहे हैं। तथा स्त्री–पुरुष–बालक बड़े चाव के साथ मन्दिरों को भर रहे हों, पर आर्यसमाज के मन्दिर खाली (शून्य) हों, अथवा इने–गिने व्यक्तियों की उपस्थिति हो, तो यही कहना पड़ेगा, कि 'आर्य समाज में कोई दोष निर्बलता, स्वार्थ का आ गया है, या प्रमाद का'।

२. शरीर और मन की उन्नति के कारण शरीर पवित्र होता है–जल स्नान से, शरीर में बल आता है–व्यायाम से। शरीर में सौन्दर्य आता है, ब्रह्मचर्य से, शरीर में लचक और नर्मी आती है–मालिश से, शरीर मोटा (हृष्ट–पुष्ट) होता है: अन्न–आहार से। परन्तु मन अन्तःकरण बलवान होता है: तो पवित्रता से, सौन्दर्य आता है तो पवित्रता से, मन लचकीला बनना है– तो पवित्रता से। आशय यह कि मन में जो भी शक्ति आयेगी वह सब पवित्रता से आयेगी। एक ही साधन है। शरीर के उन्नत होने के भिन्न–२ साधन हैं। अब, यह पवित्रता क्या वस्तु है जिससे सब प्रकार की शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं। 'स्वार्थ बुद्धि अपवित्रता है, तथा त्याग–भाव पवित्रता है। जो मन राग–द्वेष से रहित है–वही पवित्र है, उसी में ही बल और प्रियता है।

१४–५–४० मंगलवार ५ बजे प्रातः
२ ज्येष्ठ, सप्तमी शुक्ला सं० १९९७

देवयज्ञ प्रायश्चित् कर्म

देवयज्ञ एक प्रकार का प्रायश्चित् कर्म है। वायु की तो शुद्धि होगी—घी, सामग्री, समिधा से। पर अभिप्राय आन्तरिक चित्त शुद्धि का है जिस प्रायश्चित कर्म से चित्त की शुद्धि नहीं होती—वह कर्म पूरा नहीं होता।

२ चित्त की शुद्धि हा चिन्ह—

पाप, अवगुण, बुराई मनुष्य से दूर नहीं हो सकती—जब तक पश्चात्ताप न करे। पश्चात्ताप के दो चिन्ह हैं—एक निर्बल और दूसरा सबल। पश्चात्ताप करते समय मुख की आकृति बदल जाए, उदासीनता प्रकट हो, यह है निर्बल चिन्ह। सबल चिन्ह है—जिससे आंसू पश्चात्ताप करते हुए निकलें। जब तक मनुष्य के आँसू नहीं निकलते, एवं पाप के अनुसार रूदन (उतना) नहीं आता तब तक वह बुराई, अवगुण, पाप धुलता नहीं।

१५–५–४० बुधवार ५–३० सायं
३ ज्येष्ठ, अष्ठमी शुक्ला बैशाख १९९७ वि०

देवता की आवश्यकता

मनुष्य के शरीर का प्रत्येक अंग अपने–अपने देवता

की सहायता से अपने कार्य में सफलता पा सकता है। जैसे आंख बिना सूर्य की सहायता के, कान बिना आकाश की सहायता के, नासिका बिना पृथ्वी, जिव्हा बिना जल एवं त्वचा बिना वायु के कोई कार्य नहीं कर सकती। ऐसे ही मन, चित्त और बुद्धि अपने देवता के संग बिना असमर्थ हैं। इनका देवता है—"सविता"। मन बुद्धि जब सविता के संग (शरण) में जावें—तो उनका मार्ग खुल जाता है। अतः इन्हें आवश्यक है सविता का संग। यही इनकी भक्ति कहलाती है। गायत्री मन्त्र का देवता है सविता। इस मन्त्र से ही मन—बुद्धि का विकास होता है तथा सविता का संग प्राप्त होता है। जिसका सहायक सविता है, या जो सविता के अधीन होकर अपना जीवन बिताए वह सदा सन्मार्ग पर चलता रहता है। कभी उसका ह्रास नहीं होता, सदा विकास और उन्नति होती है।

१६—५—४० बृहस्पतिवार १०—३० लगभग प्रातः
४ ज्येष्ठ, नवमी शुक्ला बैशाख सं० १९९७ वि०

मांस अभक्ष्य कैसे ?

प्रश्न—मांस क्यों न खाया जावे—जब परमात्मा ने खाने के लिए बनाया है ?

उत्तर—मनुष्य का जो आहार परमात्मा ने बनाया है—वह सबका सब मनुष्य स्वयं पैदा करता है, बोता है। दूसरा उन सबको कच्चे रूप में भी खा सकता है, पक्के में भी। मांस (प्राणि वर्ग) मनुष्य स्वयं पैदा नहीं कर सकता, अतः उस का आहार (भोजन) नहीं है।

२२—५—४० बुधवार ६—३० बजे प्रातः
१० ज्येष्ठ, कृष्णा प्रतिपदा सं० १६६७ वि०

जप कब पूर्ण ?

"नाम जपत सुख पाया, मन इच्छित सुख पाया।'

यह एक वचन है—महात्माओं का। लोग जप करते हैं, पर उनको सुख नहीं मिलता, तथा मन—इच्छा भी पूर्ण नहीं होती। और दूसरे लोग यह कहते हैं कि केवल जप करने से कुछ नहीं बनता। तथा एक वे हैं—जो केवल उपदेश ही यही करते हैं कि 'यदि सुख पाना चाहते हो—तो बाबा बस नाम ही जपो।' इसके समझने में बड़ी भूल रहती है। सुख तो जप ही से मिलेगा, पर जप से सुख का उपदेश करने वालों की भावना (आशय) यह नहीं होती—कि 'जप करो, और कोई कर्म न करो'। यह

तो ऐसा है जैसे किसी ने कहा कि जामुन के पेड़ के साथ फल ऊपर लगे हैं। फल तो जामुन से मिलेगा। उसका यह आशय नहीं कि बस जामुन के वृक्ष के समीप पहुंच जाने से ही फल मिल जावेगा। जैसे उस पर चढ़ने और परिश्रम करने की आवश्यकता है, और इस कहने में कि फल जामुन से मिलेगा, वहां चढ़ना और परिश्रम करना, तोड़ना आदि सब बीच में ही निहित हैं, ऐसे ही जप से सुख का उपदेश करने वाले के कहने में ही कर्म (तदनुकूल आवंश्यक का करना) आचरण करना गुप्त (निहित) है। जप तो कर्म की अन्तिम भूमिका (मंजिल) है जिसने इसे ठीक—ठीक समझ लिया, उसें अवश्यमेव फल मन इच्छित, एवं सुख मिलेगा ही।

१०—३० बजे प्रातः

सन्तोष और लोभ

प्रश्न—वह कौन सी वस्तु है—जिससे मनुष्य तुरन्त भर जाता है एवं वह कौन सी वस्तु है—जिससे कभी भी नहीं भरता ?

उत्तर—सन्तोष तुरन्त भर देता है, लोभ कभी भरने नहीं देता।

२६–५–४० रविवार ५–१५ बजे प्रातः
१४ ज्येष्ठ, पञ्चमी कृष्णा सं० १९९७ वि०

जप अन्त तक

बहुत ऊंची भूमियों को पानी नहीं लगता, तो उन्हें सींच कर उपज लेने के लिए कृषक खाल (या कसी; दहाना) को बांधता है। कुछ काल तक पूर्ण मात्रा में पानी एकत्र होकर ऊपर के स्तर पर जब आ जाता है, तब उस स्तर से पानी छोड़ कर सींचने के योग्य होता है। पर वह पानी जब तक बराबर बंधा रहता है, और नया उसमें आता रहता है—तब ही पूर्ण भूमि सिंचित हो सकती है।

ऐसे ही जिन मनुष्यों के पूर्व मन्द कर्मों का आवरण पड़ जाने से मन रूपी भूमि का स्तर बहुत ऊंचाई पर है, उसके लिए निरन्तर जप (पुरश्चरण के रूप में) किया जाकर मन रूपी भूमि के स्तर के बराबर कर दिया जावे, तो मन प्रभु प्रीति से सिंचित होने लगता है। पर किसी पुरश्चरण के पूरा हो जाने पर—उसे त्याग नहीं देना चाहिए, जब तक मन पूर्ण सिंचित न हो जाए। अन्यथा मन वैसे का वैसा शुष्क रहेगा। जिन मनुष्यों के प्रारब्ध भोग पर ऐसा आवरण आया हुआ होता है, उन्हें भी प्रायश्चित रूप से पुरश्चरण कर के, प्रारब्ध और उद्देश्य

जग जाने तक देर है, अन्धेर नहीं। (प्रायश्चित कर्म त्यागना नहीं चाहिए)

२. कभी यज्ञों के आरम्भ में वर्षा हो जाती है। कभी आरम्भ में तो नहीं होती—मध्य में हो जाती है। कभी इन दोनों कालों में नहीं होती, अन्तिम दिन पूर्णाहुति पर तुरन्त हो जाती है। तथा कभी—कभी आदि से अन्त तक तो होती नहीं, पर होती अवश्य है—चाहे बाद में हो। ऐसे ही सकाम कर्म करने वाले मनुष्य को भी निराश कभी नहीं होना चाहिए। कभी तो सकाम कर्म करने वाले की आरम्भ काल में ही मन वांच्छा कुछ पूरी हो जाती है, कभी मध्य में प्रभु कृपा हो जाती है, और कभी कर्म कर चुकने के बाद तुरन्त ही फल मिल जाता है। पर कभी—कभी विलम्ब पड़ जाता है, तो निश्चय रखना चाहिए कि 'कर्म तो अवश्य फल देगा ही, पर जब प्रभु स्वयं उस कर्म कर्त्ता के लिए लाभकारी समझेंगे।' ऐसा विश्वास और निश्चय कर्म—कर्त्ता को करना चाहिए।

२७—५—४० सोमवार ८ बजे लगभग प्रातः
१५ ज्येष्ठ, षष्ठी कृष्णा सं० १९९७ वि०

धनी की संभाल, सावधानी से

सड़क या मार्ग मोड़ आ जाने पर जैसे मोटरकार

को मोड़ना और उसे अपने वश करके ठीक मार्ग पर लगाने के लिए अपने वश में करना भी कठिन तथा बुद्धिमत्ता के क़ाम हैं। जैसे मोटर ड्राईवर मोड़ते समय चक्कर को हाथ में काबू रखता व आंख को सदा पीछे की ओर लगाये रखता है, देखता रहता है कि कहीं मोटर किसी वस्तु से टकरा न जाए, उसे और वस्तु न रोक ले। ऐसे ही किसी साहूकार धनी पुरुष को सही मार्ग पर लगाने के लिए मोड़ने और वश में रखने के लिए बुद्धि (सूझ--बूझ) चाहिए।

१—६—४० शनिवार
२० ज्येष्ठ, एकादशी कृष्णापक्ष सं० १६६७ वि०

व्रतारम्भ प्रार्थना (हमीरपुर में)

हे मेरे प्रभु ! मैं इस १।। मास के व्रत को तेरे ही आश्रय पर करने लगा हूं, और तेरा ही आश्रित हूं। गत वर्ष गुर्दा पीड़ा एवं सख्त बवासीर के कारण विशेष व्रत न कर सका था। इस वर्ष भी और कोई समय, (विशेष व्रत अपनी आत्म शुद्धि के लिए) करने का देखने में नहीं आता था। इसलिये यही समय, गर्मी का, पर्वतीय प्रदेश में करने का विचार किया। जो तेरी ही कृपा से लाल

गिरधारी लाल जी मलहोत्रा (रिटायर्ड—लाहौर वाले) ने साथ आ यहां (इस दूर स्थान पर) अपने सुपुत्र लाल मुनीलाल जी (रेंजर वन विभाग) के द्वारा सब प्रबन्ध कर दिया। अब मैं तेरी शरण में पड़ा हूं। अपनी निज—कृपा निज प्रसाद से मेरा उद्धार करो और मेरा बेड़ा पार करो।

३—६—४० सोमवार ८ बजे लगभग प्रातः संबंधित ५—३—४०
२२ ज्येष्ठ, त्रयोदशी कृष्णापक्ष सं० १६६७ वि०

संध्या की श्रेणियां

सन्ध्या सिखाने का कोर्स (पाठ्यक्रम) बनाया जाकर सिखाया जावे, तो बहुत सफलता हो। जैसे स्कूलों कॉलेजों में प्राईमरी, मिडिल, मैट्रिक, एफ०ए०, बी०ए०, एम०ए० विभाग हैं। तदनुसार शिशुवर्ग को केवल पाठ मात्र संध्या याद कराई जावे, तथा प्रतिदिन रटाई जावे यह प्राइमरी है। कुमारों को गायत्री मन्त्र से (शिखा में गांठ लगवानी चाहिए। 'शन्नोदेवी' से आचमन, अंग इन्द्रिय स्पर्श मार्जन कराकर प्राणायाम तीन बार साधारण रूप में कराया जावे। फिर "ऋतञ्च सत्यञ्च" के बाद 'शन्नोदेवी' से आचमन करा कर, गायत्री मन्त्र का अर्थ समझाया जावे। मनसा परिक्रमा और उपस्थान मन्त्र पाठ

रूप से कराके गायत्री मन्त्र और समर्पण बोल कर 'नमः शम्भवाय च' पढाया जावे–इसे मिडिल श्रेणी समझा जावे।

फिर युवकों की श्रेणी मैट्रिक की बनाई जावे। कुछ काल इनको केवल निश्चल बिठावें, कि ये मच्छर मक्खी से खुजली न करें फिर उनको पहले तो 'अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा से तीन आचमन करा कर–प्राणायाम कराया जावे। फिर 'शन्नो देवी' से आचमन इन्द्रिय स्पर्श, मार्जन आदि सब क्रियाएं कराई जावें। तथा फिर भावार्थ मन्त्रों के, उनको याद कराये जावें। 'ऋतञ्च सत्यञ्च' के बाद, 'शन्नो देवी' आचमन के बाद, गायत्री मन्त्र मन में अर्थ सहित विचार करें, तथा शेष सब मन्त्रों के साथ, मन्त्रों के अर्थों की भावना, साथ मन में करें। इनकी संध्या इकट्ठी न हो, अकेली होनी चाहिए।

फिर उनसे बड़े ब्रह्मचारी कोर्स समाप्त करने वाले या गृहस्थी जन–उनको अब बड़ी तैयारी करानी चाहिए। पहले पहल तो 'खाली बैठना' सीखें कि न खुजली करें, न मक्खी मच्छर को हाथ से उड़ाएं–अपितु वृत्ति लगाकर उसे हटाएं। शरीर स्थिर तथा निष्क्रिय सा रहे। फिर गायत्री मन्त्र से शिखा को गांठ देकर मन्त्रों के शब्दों मे अपने आप को टिकावें। मन्त्र के किसी भाग में वृत्ति

बदल (भटक) जावें, तो प्रारम्भ से फिर संध्या आरम्भ करें। वक्त निश्चित कर लेवें, चाहे उस काल में एक मन्त्र ही हो। ऐसे अभ्यास करते रहें। यह एफ०ए० की श्रेणी जानो।

अगली मंजिल (=भूमिका) बी०ए० की है—जिसमें समाधिस्थ अवस्था स्थापित होगी। योगी की भांति वह मन्त्र के शब्द अर्थ और भाव में लीन हो जावें, और विधिवत् अपनी इन्द्रियों के कर्मों की पड़ताल करें।

नोट—(१) शरीर तब नीरोग रहता है जब वात पित्त कफ अवस्था में रहते हैं। मन की नीरोगता सत् रज तम वृत्ति सम हो जाने से सन्ध्या में इन तीनों का सम करना प्रथम आवश्यक है। तब सुख शान्ति की वर्षा और अभीष्ट सिद्धि होगी।

(२) मिडिल क्लास वालों को पहले प्राणायाम न कराके तीन बार ओ३म् गहरे श्वास से करायें जिस से इन्हें आसानी रहे और मन की एकाग्रता हो जावे।

४—६—४० मंगलवार ५—३० लगभग प्रातः
२३ ज्येष्ठ, चतुर्दशी कृष्णा सं० १६६७ वि०

पितृ-ऋण

बहुत थोड़ी संख्या में ऐसे पुत्र होंगे—जो सच्चे मन

से यह लालसा रखते हैं कि उनके माता–पिता उनके पास रहें जिससे कि उन्हें प्रतिदिन सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त रहे। पुत्र माता–पिता की विद्यमानता (अपने पास) अपने लिये सच्चा वरदान और सच्ची शान्ति समझते हैं ? और सचमुच उन्हें वरदान और प्रसन्नता मिलती भी रहती है। कोमल चित्त माता–पिता की सन्तान अपने लाभ के लिए या सेवा भाव से चाहती ही है कि उनके माता–पिता उनके पास रहें। परन्तु कठोर प्रकृति के माता–पिता को कोई सन्तान (विरली ही) चाहती हो, तो चाहती हो। अन्यथा यही चाहते हैं–हम उनसे दूर रहें, जिससे हमारा समय अच्छा बीत जाए। कई तो शुद्ध भावों से चाहते हैं कि कभी हमसे उनका निरादर न हो जाए। या हम उनकी आज्ञा का कभी उल्लंघन न कर बैठें। तथा प्रायः अपने आराम के लिए चाहते हैं कि हम दूर रहें। माता के उपकार और उसकी सेवा तो गिनने में नहीं आती अनुमान लगाया जावें–नन्हें शिशु को माता का खिलाना, पिलाना, सुलाना और जगाना, लोरी देना, दिन भर उठाए रखना, या गोद में लिटाए रखना, या उसे हंसाना, मन बहलाना–सब सेवा ही है। दो वर्ष की आयु तक जिसके ३६५×२=७३० दिन×२४=१७५२० घण्टे होते हैं। तीन वर्ष से ऊपर के बच्चे की भी सेवा माता

करती ही रहती है। पर सब समयों को आंखों से ओझल करते हुए यदि पहले दो वर्षों की सेवा का बदल (फल-प्रत्युपकार) भी कोई सन्तान सेवा के रूप में चुकाना चाहे-तो उसे कई जन्म चाहिएं। बड़ा आज्ञाकारी पुत्र, युवा होकर, जिसे प्रभु ने धन प्रतिष्ठा, शासनाधिकार दिया हो-वह माता-पिता की सेवा करने लग जावे-तो कितनी सेवा कर सकेगा ? रात को एक घण्टा भर उनको दबा देगा। यदि प्रतिदिन निरन्तर सेवा करे-तो अपनी शेष आयु में २६२८० घण्टे कब पूरे कर सकेगा ? परमात्मन् देव की उन व्यक्तियों पर बड़ी कृपा है-जिन को माता-पिता की सेवा का सौभाग्य प्राप्त है।

"अच्छे वहीं हैं बच्चे, मां बाप को जो मानें"।
सर-माया ये शराफत, मां-बाप की है खिदमत।"

आचमन मन्त्र-रहस्य

२. शरीर तब नीरोग रहता है- जब वात, पित्त कफ सम अवस्था में रहें। तथा मन की नीरोगता सत्व, रज, तम, वृत्ति सम हो जावे। और संध्या में इन तीनों का सम करना प्रथम आवश्यक है। तब सुखशान्ति की वर्षा और अभीष्ट सिद्धि होगी। जल का पीना, जल के गुणों का चिंतन और मनन इसमें अत्यन्त सहायक है।

७–६–४० शुक्रवार ६–४५ सायं
२६ ज्येष्ठ, द्वितीया (शुक्ला) सं० १६६७ वि०

किस पवित्रता से कौन प्रसन्न ?

किसी पुरूष की स्त्री की तभी प्रसन्नता रहती है—जब पुरूष का आचार पवित्र हो। माता तब प्रसन्न रहती है जब पुत्र का आहार पवित्र हो। भाई की प्रसन्नता इसमें है कि जब व्यवहार पवित्र हो बहन की प्रसन्नता होती है—जब विचार पवित्र हो।

८–६–४० शनिवार ५–०० बजे लगभग प्रातः
२७ ज्येष्ठ, तृतीया शुक्ला सं० १६६७ वि.

सेवा बिना कष्ट सहे, अधूरी

हे मानव ! ज़ब तू दूसरे का कष्ट हरना चाहता है, और यह भी चाहता है कि तुझे कष्ट न हो तो स्मरण रख—तू कभी दूसरे के कष्ट को दूर कर ही नहीं सकता। क्योंकि कष्ट तो विद्यमान है। इसकी सत्ता को तो विनष्ट तू कर ही नहीं सकता। वह कहां जाएगा ?—हां, जब तू ने कष्ट लेना गवारा किया। (सहने को तैयार हुआ)—तो फिर उससे कष्ट दूर हो गया। ज़ो स्वयं आराम चाहता

है—वह दूसरे को कैसे आराम दे सकता है ? वस्तु तो ए
के पास रहनी है। एक वस्तु दोनों के पास कैसे रहे ?
यदि किसी की पीड़ा हटाना चाहता हूँ, तो जैसे पीड़ि
पीड़ा को अनुभव कर रहा है—उसी प्रकार मैं पह
उसकी पीड़ा को अनुभव करूं—मुझे पीड़ा होने लगे, तो
उसकी पीड़ा को हरने लग जाऊंगा। आग लगी हो
और तुम बुझाने जाओ—तो क्या पहले यह विचार कर
न जाओगे कि संभवतः मुझें ही आग लग जाए ? जब य
अग्नि अपने अन्दर लग जाती है—तो उछल दौड़ क
दूसरे की आग बुझाने जाता है और उस समय उसे कुछ
नहीं सूझता। जैसे--जैसे आग बढ़ती जाती है—वैसे ही
उस व्यक्ति को जिसके अन्दर बुझाने की अग्नि लगी
हुई—वह भी बढ़ता जाता है उसे कुछ नहीं सूझता। यदि
वह व्यक्ति सब प्रकार से भी सही—सलामत रहे—तो सेंक
तो उसे अवश्य ही लगेगा। इसी प्रकार सब सेवा—उपका
करने वालों को कष्ट अवश्य होता है। पर वे उस कष्ट
का नाम 'अपनी प्रसन्नता' रखते हैं।

७—४५ प्रात:

आहुति और उदारता

२. जब तू यज्ञ— अग्निहोत्र करने लगे—तो फिर

यह न समझ कि मैं अपने घर से यज्ञ कर रहा हूं। यदि ऐसा विचार करेगा—तो अवश्य संकोच आ जाता रहेगा। मनुष्य का हृदय बड़ा संकुचित है। उदार कोई—कोई होता है पर वह भी सब कामों (कर्मों) में, सब दानों में उदार नहीं हुआ करता। यज्ञ के समय तो यही समझना चाहिए कि यह लूट का काल है। इसे ऐसे लुटाना चाहिए—जैसे लूटने वाले बेतहाशा लूटते हैं। प्रभु के खजाने से आई हुई—बरकत, लूट के समान ही होती है। वह उसे, जिसे अपने भीतर प्रविष्ट होने देता है— कि कहता है—'लूट ले, जितना लूट चाहे लूट !' जो दिनों में शाह बन जाते हैं—वे कैसे बन जाते हैं ? अतः यज्ञ करने वाले को अपनी देने वाली आहुति, अपनी समझ कर न देनी चाहिए।

६—६—४० रविवार ५—४५ प्रातः
२८ ज्येष्ठ, चतुर्थी शुक्ला सं. १९९७ वि.

सन्ध्या और पवित्रता-अन्योन्याश्रित

प्रश्न—संध्या से मन पवित्र होता है, या पवित्र मन से संध्या होती है।

उत्तर—भली प्रकार प्रेमभाव से प्रभु का ध्यान करने,

और भले विचारों का चिन्तन करने. मन्त्रों को अर्थ और भाव सहित विचार करने से मन पवित्र होता है मन पर प्रभाव पडता है। ऐसी संध्या करने वाले व्यक्ति के मन में जब पाप उठता है—तो उसे भय आ जाता है और उसके अपने उसी (मन के) भाव द्वारा, मन्त्रों द्वारा जो प्रार्थना हुई है, वे ही भाव और शब्द स्वतः उसे पाप करने से लज्जा दिलाते हैं। अतः संध्या करने से मन पवित्र होता है। एवं जब मन पवित्र हो गया—तो फिर वह खूब टिक जाता है। जैसे पानी से बर्तन साफ किया जाता है—तो फिर साफ बर्तन में जब पानी रखो—तो पानी पवित्र और सुथरा रहता है। ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं। मन को शुद्ध विचार के बिना, और सत्य ज्ञान के बिना कोई वस्तु पवित्र नहीं कर सकती। सत्यज्ञान, सत्संग से, स्वाध्याय से और शुद्ध विचार भले कामों के चिन्तन से प्राप्त होते हैं। अतः इनको भी इसीलिए ब्रह्मयज्ञ कहा गया है। इससे मन पवित्र बनता है। अथवा जैसे कोई पूछे कि शरीर आत्मा के आश्रय है—या आत्मा शरीर के आश्रय टिका हुआ है ? तो यही उत्तर देना पड़ता है कि दोनों एक दूसरे के लिए अनिवार्य हैं।

१०—६—४०. सोमवार ६—०० बजे प्रातः
२६ ज्येष्ठ, पञ्चमी शुक्ला सं. १९९७ वि.

भक्त की साधु सेवा

सन्त साधु सेवा से निर्धन को शाबाश या प्रशंसा से क्या लाभ ? निर्धन को चाहिए—रोटी। तथा धनी को चाहिये—सेवा का फल—सोटी, और भक्त को चाहिए—लोटी ही लोटी। यदि निर्धन को साधु—सेवा से रोजगार बढ़ता जाए—तो वह बहुत प्रसन्न होता है। पर धनी को आजीविका की आवश्यकता नहीं—उसे अब प्रतिष्ठा, शासनाधिकार राज दरबार में, शोभा पदवी—अलंकार की आवश्यकता है। अगर उसे साधु सेवा से वह मिल जावे—तो अपनी सेवा सफल समझता है, तथा प्रसन्न होता है। पर भक्त इन दोनों वस्तुओं को नहीं चाहता। वह तो स्वयं साधु, विरक्त, त्यागी केवल 'लोटी' (कमण्डल और नाम धन की लूट) में ही प्रसन्न होता है।

१०—४५ दिन

श्रम और सत्य की महिमा

किसान जब शरीर से खूब कमाई कर लेता है, तो उसे खूब भूख लगती है। जो अन्न सादा से सादा और

एक प्रकार का ही उसके सम्मुख आता है, वह उसे बड़ा स्वादिष्ट लगता है और उसे बड़ी शक्ति देता है। या कोई अन्य 'व्यवहार करने वाला' मनुष्य जब व्यायाम, शरीर से खूब कर लेता है तो उसे भोजन का बड़ा आनन्द आता है—और वही भोजन फिर उसके शरीर में बल और कान्ति पैदा करता है। जो व्यायाम या श्रम नहीं करते, तथा विविध प्रकार के भोजन खाते हैं—स्वादिष्ट बना कर, फिर भी उनमें बल पैदा नहीं होता। वे शिकायत ही करते रहते हैं। ऐसे ही जो मनुष्य व्यवहार पवित्रता से करता है—वह जो थोड़ी सी पूजा भी (प्रभु की) करता है—वह उसके लिये आनन्द देने वाली और कान्ति (ज्योति) पैदा करने वाली होती है। जिन मनुष्यों के व्यवहार पवित्र नहीं—उन्हें नाना प्रकार की पूजा, संध्या, उपासना, प्रार्थना, जप, यज्ञ—हवन, तप, व्रत आदि करने पर भी आनन्द और रस नहीं मिलता। वे सदा शिकायत करते रहते हैं कि 'हमारा मन शान्त नहीं होता, यद्यपि बहुत जप—तप करते हैं।

सत्य व्यवहार करने वाला मनुष्य यदि केवल प्रार्थना भी करता है—तो इसी में उसे आनन्द आता है। अथवा थोड़ा सा भी जप करता है—तो गद्गद् हो जाता है। यज्ञ—हवन करता है—तो फिर मारे प्रसन्नता के फूला नहीं

समाता। उसका चित्त तुरन्त (समाहित) हो जाता है—और शान्ति का रस पान करता है।

१—३० बजे दिन

स्वप्न और यथार्थ सम्बद्ध हैं

राजा या बादशाह विषय विलासी हो—तो उसके कर्मचारी (प्राइवेट सेवक) उसे प्रसन्न करने के लिए सुन्दर स्त्रियां दूर—दूर से लाकर प्रस्तुत किया करते हैं। ऐसे ही मन जो इस देह में राजा के समान है, यदि विषय—विलासी हो, तो दिन रात, स्वप्न में चित्त उसके सामने वही रूप—आकृतियां प्रस्तुत करता रहता है। यदि मन धर्मात्मा राजा बन जावे, उसे विषय—विलास से घृणा हो जाए, तो भूल कर भी चित्त कभी ऐसे दृश्य प्रस्तुत न करेगा। जिस—जिस विषय में मन की प्रवृत्ति होती है—वैसे ही स्वम्न में, वह, सामान, देखता है। सत्व—रज—मिश्रित गुणों का अभ्यासी मन कभी—२ उत्तम—उत्तम धर्म के दृश्य (साधु महात्माओं के दर्शन), सत्संगकथा, उपदेश, यज्ञ, जपादि में निद्रा काल में पाता है, और कभी विषय—विकारी अवस्थायें। जो मनुष्य विषय—विकार से सदा बचने का यत्न करता रहता है, और जागृत में पाप से अपने आप को कम्पायमान करता रहता है— पर इतना

उसमें तेज-बल नहीं आया होता कि पाप उसके सामने न आये-तो उसको भी निद्रा में पाप के सामान सामने आते हैं-पर प्रभु कृपा से, वह सदा बच जाता है। क्योंकि वह जागृत का संस्कार उसकी उस समय भी रक्षा करता है। इसलिए हर समय ऐसा अभ्यास, और बड़ा अभ्यास करते रहना चाहिए-जब तक कि पाप कर्म से घृणा का साक्षात् न हो जाए, एवं प्रभु कृपा से, वह पापविनाशक तेज (भर्गः) उत्पन्न न हो।

५-४० सायं

शुद्धि और प्रायश्चित् प्रतिदिन क्यों ?

स्नानागारों में प्रायः मूत्र की दुर्गन्धि आया करती है। जो मनुष्य स्नानागारों में मोरी के पास मूत्र त्यागते रहते हैं तथा उसी समय जल से धो नहीं छोड़ते अर्थात् जल नहीं डालते, वह फिर कुछ दिन पश्चात् ऐसी दुर्गन्धिमय हो जाती है कि चाहे वहां मश्कों और मटकों जल डाल कर साफ करो-दुर्गन्धि नहीं जाती तब तक कि फिनायल के पानी से उसे न धोया जावे। हां, प्रतिदिन जल साथ-साथ डाल देने से भी सारी दुर्गन्धि नहीं मरती, अशं मात्र दुर्गन्धि आती ही है। उसे भी कुछ दिनों बाद फिनायल से धोना पड़ता है। ऐसे ही मनरूपी

स्नानागार में, जहां अशौच, अपवित्रता का व्यवहार होता है, यदि प्रतिदिन संध्या–जप से, उसे साफ न किया जाता रहे तो फिर उसके लिये भारी प्रायश्चित् की आवश्यकता पड़ेगी।

११–६–४० मंगलवार ६ बजे प्रातः
३० ज्येष्ठ, षष्ठी शुक्ला सं० १६६७ वि०

अभ्यास और वैराग्य से सिद्धि

मन के न टिकने (ध्यान में) के जहां बहुत से कारण बतलाये जाते हैं–वहां सबसे मोटा कारण है–'राग–द्वेष' यही मन की अपवित्रता है। 'राग' दूर होगा 'वैराग्य' से और द्वेष दूर होगा 'अभ्यास' से। पवित्रता से वैराग्य होता है। वैराग्य का अर्थ घरबार (राग) त्यागना नहीं, अपितु ईश्वर और प्रकृति की तुलना करना है। प्रकृति से ईश्वर श्रेष्ठतर है। जो श्रेष्ठतर है–उससे अनुराग, और जो न्यूनतर है–उससे वैराग्य। सबको अपने तुल्य समझने का बार–२ अभ्यास करने से 'द्वेष' दूर हो जाता है।

संस्कृत की महिमा

२. ब्रिटिश राज्य के अन्दर जो मनुष्य अंग्रेजी जानता है, (जो राजभाषा है) तो वह मनुष्य जहां भी उस राज्य में चला जावे चाहे उस देश की बोली न भी जानता हो,

तो भी उसका काम चल जाता है।क्योंकि राजभाषा सर्वत्र (इस राज्य में) व्यापक है। ऐसे ही संस्कृत वाणी दिव्य भाषा है। प्रभु (वेद का प्रकाश करने वाले) का नाम 'सविता' देव है, इसकी वाणी दिव्य-वाणी कहलाती है, और प्रभु का राज सर्वत्र है, अतः इस दिव्य भाषा को जानने वाले, इस भाषा में प्रार्थना, स्तुति, जप आदि करनेवाले की रसाई (पहुँच) सर्वत्र हो जाती है राज भाषा का जानना आवश्यक है। प्रभु सब के राजा हैं, हमारे राजा है। उसकी राजधानी में रहते हैं। इसलिये सब मनुष्यों को, यह राजभाषा जाननी आवश्यक है।

१२-६-४० बुधवार ६-१५ लगभग प्रातः
३१ ज्येष्ठ, सप्तमी शुक्लपक्ष सं० १६६७ वि०

कर्म भोग

प्रश्न-जो मनुष्य अति विषयी होते हैं। तथा स्थान-स्थान पर व्यभिचार करते हैं, किसी की नहीं सुनते। तथा फिर उसी आयु में सहसा ऐसे सुधर जाते हैं कि फिर वैसा पाप उनके सामने भी नहीं फटक सकता। यह क्या कारण होता है ? तथा फिर उसका फल क्या होगा ?

उत्तर—प्रत्येक मनुष्य की मनोदशा सत्व, रज, तम की बनी है। जब तम अवस्था आती है—तो पाप करने लग जाता है। जब रज की अवस्था होती है—तो पुण्य कर्म और पाप दोनों की इच्छाए पैदा होती हैं। तथा सत्व की अवस्था में वह निरे पुण्य ही करता रहता है। सत्व—रज की अवस्था में वह पाप के विचार को उत्पन्न तो करता है—पर दबा देता है, तथा पुण्य के विचार जो पैदा होते हैं—वे तुरन्त क्रिया में आ जाते हैं। यह बात प्रसिद्ध है कि मनुष्य का जब जन्म हुआ—तो उसके पाप और पुण्य बराबर होंगे, या पुण्य अधिक और पाप कम। इसलिये जब पूर्व जंन्म और जन्मांतरों के भी पुण्य, और उनमें भी प्रबल पुण्य और प्रबल पाप भी होंगे, तो जब समय प्रबल पाप के संस्कारों का समाप्त हो गया, और पुण्य प्रबल—अतिप्रबल का दौर आ गया—तो तुरन्त थोड़े से उपदेश या थोड़ी सी घटना के देखने—सुनने से उस मनुष्य का मन बदल गया। तथा क्योंकि अब पूर्व संस्कारों की सहायता से अंब भी वह शुभ कर्मों में प्रवृत्त हो गया—तो लोग घृणा के स्थान पर उससे प्रेम और आदर करते हैं, एवं अपयश के स्थान पर यश करते हैं—अतः उसका साहस और भी बढ़ जाता है।

(ख) अब रहा यह प्रश्न कि वह पाप कर्मों में प्रवृत्ति कैसे हो गई ?

पूर्व जन्म में अन्त समय में प्रबल वासना काम की रही, या पाप मय कर्मों की रही, तथा उन्हीं संस्कारों से ऐसे माता पिता के गर्भ में आया—जिनके उस गर्भ के समय भी वैसी परिस्थितियां हो गईं, और जन्मते ही व उन पाप मय संस्कारों के अधीन उत्तेजित होता रहा कोई सम्बन्धी, स्त्री, चाची, मासी, मामी या उनकी लड़कियां जिनसे खेलने में, सोने में, बैठने में किसी को या घर वालों को भी भ्रान्त धारणा नहीं हो सकती, तथा बचपन की अलबेली बेसमझी के काल में किसी को सन्देह क्यों हो सकता है, उस बच्चे की कुचेष्टायें बढ़ती रहीं। फिर बड़ा होकर वह सब स्थानों पर फैल गया, और पापी बन गया।

(ग) अब दूसरा प्रश्न है—आगे उसका क्या बनेगा। यदि तो उन पापों का घोर पश्चात्ताप —प्रायश्चित् इस जन्म में कर लिया, और रो—रोकर, व्याकुलता से, अपने अन्तःकरण को शुद्ध कर लिया—तो आगामी जन्म में व— कृत—कर्मों के पाप के संस्कार तो अवश्य रहेंगे पर वे दुर्बल होंगे। पुण्य कर्मों के कारण वह उन कुसंस्कारों के

जो उसे स्वप्न में, दिन में, जागृत में, एकान्त में, या समूह में—स्त्रियों को देखने पर जागेंगे उनके निर्बल होने के कारण, तथा अपने दूसरे नये पुण्य कर्मों के कारण उन्हें दबाता—मिटाता रहेगा। क्रियात्मक पाप की सम्भावना उससे फिर नहीं होगी। तथा उससे अगला जन्म, यदि शुभ कर्मों मे बीत रहा है—तो पाप का संस्कार (निर्बल रूप में भी) न रहेगा।

(घ) यदि पुण्य कर्मों में तो लग गया—और पापों को त्यागना मात्र पर्याप्त समझ बैठा, परन्तु कोई पश्चात्ताप—प्रायश्चित्, रुदन—व्याकुलता नहीं हुई—तो फिर अगले जन्म में अवश्य पाप—संस्कार उसे दुःखी करेंगे, फिर दण्ड भुगतवायेंगे।

दो प्रकार के साधु सेवी

(२) किसी साधु—महात्मा के पास जो लोग सत्संग अथवा सीखने के लिए आते हैं—एवं व्रत, जप, तप—साधन करते हैं—उनमें कई एक तो इस विचार को लिए होते हैं—कि हम भी ऐसे ही साधु—महात्मा बन जावें। दूसरे होते हैं—इसलिए कि हमारा मन परिवर्तित हो जावे, हमारे जीवन में परिवर्तन आ जावे तथा हम अच्छा जीवन बना

सके। पहले प्रकार के तो साधु बन जाते हैं महात्मा
भांति रहन–सहन अर्थात् बाहरी–भेष, बाहरी रुप, त
एकान्त वास, एकान्त शयन, उसकी भांति भूमि या त
पर सोना, आसन लगा कर बैठना–इत्यादि बना लेते
उनमें सेवा भाव नहीं आता। वे उलटा सेवा कराते रह
चाहते हैं। पर दूसरे प्रकार के, ज्यों–ज्यों दिल–बद
हैं त्यों–त्यों उनमें सेवा भाव, आन्तरिक नम्रता; उप
अधिक आता जाता है। वास्तविक सन्त–साधु तो ये
बनते हैं। पर जो जीवन तो साधुओं का बना लेवें
काम गृहस्थियों का करें–ये सन्त, कृत्रिम सन्त बे
और भार हो जाते हैं।

अस्वीकृत साधक ऋणी

(३) साधक की (तप, भजन, व्रत करने वाले
सेवा जो–लोग करते हैं–उनकी सेवा खरी हो जाती
यदि तो व्रत करने वाले साधक का व्रत सफल
गया–प्रभु को स्वीकृत हो गया; तथा व्रती की अ
आत्म शुद्धि हो गई, मल धुल गया, तो प्रभु स्वयं
सेवादारों को फल देना, अपने ऊपर ले लेता है, उ
कर्जे आप चुकाता है। जब जिसने जिसको स्वीकार
लिया, शरण में ले लिया, तो उसके सब बोझ उसी

हो जाते हैं। पर यदि व्रत से आत्म–शुद्धि न हुई–मल का आवरण बराबर चढ़ा रहा, प्रभु नें टस से मस तक न किया–तो फिर सेवादारों का भार भी साधक को स्वयं ही ढोना और कर्जा चुकाना होगा।

११–३० बजे दिन (लगभग)

रुदन रहस्य

जो मनुष्य स्वार्थ–वश रोता है–उसे बहुत दुःख होता है और जो परमार्थ के लिए, दूसरे के दुःख–पीड़ा को अनुभव कर के रोता है, उसे प्रेम और प्रसन्नता होती है। जो आने वाले दुःख के भय से रोता है–वह दुःखी होता है। जो किये हुए पाप के भय से रोता है–उसे सुख होता है। मन को ऐसा लचकीला और कोमल बनाओ–कि अनेक बार प्रेम के आंसू बहाए। जिस वस्तु (घटना) के लिए मनुष्य रो पड़ता है उस वस्तु (घटना) का उस पर प्रभाव पड़ता है।

१३–६–४० बृहस्पतिवार ३–३० बजे प्रातः
३२ ज्येष्ठ, अष्टमी शुक्ला सं. १६६७ वि.

वरुण से पुकार

हे मेरे प्रभो ! मुझसे तो वे मिट्टी के माधो भी अच्छे हैं जो तेरे नियम में रहकर तिल मात्र भी तेरी आज्ञा और

नियम के विरुद्ध नहीं चलते। जिन्हें कि मैं जड़–ज
कहता हूं। परन्तु मैं हूँ एक, जिसे तू अपनी अनेक दा
(वरों) से प्रतिदिन तृप्त करता है, विपत्ति और संकट
लाज रखता है। कभी–कभी अपनी विचित्र लीला का
दर्शन कराता है–हंसाता है, खिलाता है, मान प्रतिष्ठा
कराता है। अपने पवित्र नाम का दान भी एवं पवि
चरणों का वास भी प्रदान करता है। अपने प्यारे मह
आत्माओं से आशीर्वाद भी दिलाता है तथा अपना
प्रसाद देने में कृपणता नहीं करता। मेरी सुख
सुविधा–शान्ति के लिए सब सामान करा देता है। बड़े–ब
धनियों को तू प्रेरणा कर उनसे सेवा भी कराता है। ज
मुझे कोई न्यूनता नहीं होने देता–तो फिर भी प्रभो !
कितना गया–बीता हूँ कि तेरी आज्ञाओं का सदैव पाल
नहीं कर सकता। पीछे ही रह जाता हूँ। कभी सोचते
सोचते तेरी आज्ञा के पालन करने का अवसर खो बैठ
हूँ। कभी बात समझ में भी नहीं चढ़ती–कि इस सम
तेरी क्या इच्छा है–जिसके मैं, अनुकूल हो जाऊं। अ
में तो यही विनती विनीत भाव से करता हूँ–प्रभो ! मैं
आपका आश्रित हूँ–मेरा आप ही मार्ग–दर्शन कर दि
करो–**"ओ३म्-इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय
त्वामवस्यु राचके।"**

'हे वरुण देव ! आज तो आप मेरी पुकार सुन लो मैं अपनी रक्षा के लिए तेरा आवाहन और आराधना करता हूँ'।

आंखों के नीचे कालापन

"दृश्य"

कुछेक मनुष्यों की आंखों के गोलक के निचले भाग काले होते है (बहुत काल से सोचता था—पर पता न लगता था। आंज प्रभु ने अपार दया की) यह चिन्ह है दूरदर्शिता का। पर ये भी दो प्रकार के होते हैं—एक मायावी (स्वार्थ की), दूसरी पारमार्थिक—दृष्टि की। मायावी स्वार्थी मनुष्य एक स्थान पर बैठे—२ अपने चारों ओर के काम करने वालों को, बड़ी तेजी और किसी को न प्रतीत होने वाली दृष्टि से बार—बार देख लेता है—कि वे क्या कर रहे हैं। उनका दृष्टि कोण क्या है। दूसरे की चेष्टाओं को C.I.D. (सी० आई० डी०) की भांति भांपता। पर ये होते—भयानक हैं। समय पर दूसरे का पर्दा फाड़ देते हैं—अपने स्वार्थके हेतु उसे हानि पहुँचाने के लिये। दूसरे पारमार्थिक दृष्टि वाले भी इसी प्रकार देखते हैं—पर वे सुधार के लिये। समय पर मिठास और प्यार से—शुद्ध भाव से प्रकट करते हैं। तथा जिस किसी में कोई गुण

देखते हैं—उसको अपने पवित्र हृदय में स्वीकार कर ले
हैं। उनकी प्रशंसा करते, उनके उठाने में सहायता करते
तथा स्वयं भी उनके उस गुण को धारण करते हैं। उन
रश्क (स्पर्धा भाव) हो जाता है। परन्तु पहले—सांसारि
प्रकार के व्यक्तियों को दूसरे का गुण देखकर ईर्ष्या ह
जाती है, और वे उस की प्रशंसा नहीं कर सकते। य
कालिमा उनके हृदय की, और दृष्टि की कालिमा क
प्रकट करती है तथा पारमार्थिक वालों की यह कालि
उनकी दृष्टि से दूर होकर नीचे चली गई है। इस ही
आंख का सात्विक तेज पड़ता दिखाई देता है, पर पह
पर तामासिक तेज।

१५—६—४० शनिवार ५—१५ बजे प्रा
२ आषाढ़, दशमी ज्येष्ठ शुक्ला सं. १६६७ वि०

अन्तर के पट तब खुलें, बाहर के जब दे

आखे मूंद लेने पर मानसिक—सृष्टि खड़ी हो जा
है, वे ही रुप और शब्द—जो जागृत में क्रियात्मक रुप
होते हैं, वही उनकी झलक विचार रुप से, आंखें—मूंद
पर, आ जाती है। यद्यपि वस्तु सामने नहीं होती। जिनक
आध्यात्मिक आंखें (ज्ञान चक्षु) मुंदे हुए हैं यह अवस्था

उनकी होती है। पर जो बाह्य दृष्टि बन्द करके अन्दर की खोल देते हैं—उनके सामने आध्यात्मिक जगत् आ जाता है।

८—१५ बजे प्रात.

आचमन

जल से स्थूल शरीर की शुद्धि तो होती है, पर जल से मन भी शान्त और पवित्र होता है, एवं बुद्धि भी। जल का चन्द्रमा के साथ सम्बन्ध है—"चन्द्रमा मनसो जातः"। चन्द्रमा मन (मनस्तत्व) से पैदा हुआ। तथा मन का चन्द्रमा से सम्बन्ध है। इसलिये शास्त्रकार कहते हैं कि गर्भवती स्त्री चन्द्र को देखा करे। पूर्णमासी के चन्द्रमा में खूब आह्लाद करे, ताकि शिशु के मन पर शीतलता का प्रभाव पड़े। तथा चन्द्रमा रस को पैदा करता है। घृत में जल का अंश अधिक है, एवं वह रसदार है। घृत से घी बनता है। अतः जल का बुद्धि के साथ सम्बन्ध है। जिसे ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा कि जल मेधा के लिए हितकर है—

"तेन हि पूतिरन्ततः। मेध्या ह वै आपः। मेध्यो भूत्वा व्रत मुपयानि।" जल शान्त तथा पवित्र है, मेधा के लिये हितकर है।

२— "ऋतञ्च सत्यञ्च" अघमर्षण मन्त्र के बाद आचमन मन्त्र क्यों, तथा गायत्री मन्त्र क्यों ?

उत्तर– जब मनुष्य अपने पापों को याद करता है–तो रो पड़ता है। रोने से ही पापों का 'मर्षण' होता है। अतः रोने से गला बन्द होता है, आगे विचार करने के लिये अतः आचमन की आवश्यकता है–कि गला खुल जावे और शान्ति भी आ जावे। गायत्री मन्त्र द्वारा प्रायश्चित करके प्रार्थना करे, तब "मनसा० प्रकरण" करे।

ज्ञान और भक्ति

३– शुभ कर्म करने के लिए पहले रुचि पैदा करने की आवश्यकता है। वह रुचि तब पैदा होगी–जब उस शुभ कर्म का महत्व, फल, गुण का ज्ञान कराया जावेगा। अतः ज्ञान तो कर्म में रुचि–उत्साह पैदा कर सकता है–पर करने की शक्ति, भक्ति से आती है। अतः भक्ति कर्म के लिए आवश्यक हो जाती है। जैसे यह कहा जावे कि यह इंजन बहुत श्रेष्ठ है, बहुत काल तक काम दे सकता है, और बहुत सस्ता है। इसके लेने से, और इसको चलाने से, काम लेने से हजारों रुपये की बचत होगी। तो वह आदमी इस बात का ज्ञान पाकर इंजन ले लेता है। पर अब इंजन चले कैसे, इसमें शक्ति कैसे आवेगी–जब तक कि इसमें भाप, बिजली या पैट्रोल नहीं डाला जावेगा। यही भाप–बिजली या पैट्रोल–भक्ति है।

४— सध्या का अर्थ "भली भांति ध्यान करना या ध्यान किया जावे—जिसमें प्रभु का—वह सन्ध्या हैं" ऐसा जो अर्थ है। प्रभु का भली भांति ध्यान या उस प्रभु में कैसे ध्यान जमाना किया जावे ? इसका आशय यह है कि प्रभु के जो उपकार हैं, जो उपकार उसने हमारे साथ किये हैं उनका चिन्तन किया जावे, यही प्रभु का ध्यान है।

५— सन्ध्या के आरम्भ में आचमन मन्त्र से पहले गायत्री मन्त्र क्यों ?

सन्ध्या ब्रह्म यज्ञ है। ब्रह्मयज्ञ के तीन अंगों में—वेद पढ़ना ब्रह्म यज्ञ है। क्योंकि सन्ध्या वेद के पवित्र मन्त्रों से आरम्भ करनी होती है। अतः गायत्री मन्त्र मुख में (आरंभ में) पढ़ा जाता है, वेद मुख (गायत्री) होने से।

४—१५ बजे सांय

प्रश्न—गायत्री मन्त्र से चोटी को गांठ क्यों ?

उत्तर—वेदों में गायत्री मुख है—तथा चोटी का(=प्रधान) मन्त्र है। जैसे शरीर में चोटी का ऊंचा स्थान है। सिर में चोटी जिस स्थान पर है—वहां प्राणों का केन्द्र है। इसी स्थान से प्राण—धारा नीचे को,बह कर शरीर को जीवन देती है। वेदों में गायत्री का दर्जा प्राण का है। चोटी से.

क्योंकि, सुषुम्णा नाड़ी सीधी रहती है। मेरु दण्ड के सीधा रहने से आयु बढ़ती, विचार पवित्र होते हैं। शरीर का आन्तरिक व्यवहार नीरोग रहता है, अतः सन्ध्या गायत्री को आयुवर्धक स्वास्थ्यप्रद, पतित पावन, पवित्र करने वाली कहा गया है।

१६–६–४० रविवार ५–१५ प्रातः
३ आषाढ़, एकादशी ज्येष्ठ शुक्ला सं० १६६७ वि०

मनसा-परिक्रमा

मनसा परिक्रमा अर्थात् मन के द्वारा परिक्रमा करना। मन के द्वारा कैसे परिक्रमा हो सकती है ? मनसा का अर्थ है ज्ञान से तो ज्ञान के द्वारा परिक्रमा करना। अब इन मन्त्रों में अज्ञान–अन्धकार का नाश होना आरम्भ होगा। और ज्यों–ज्यों दिशा, परिक्रमा की, बदलेगी–त्यों–त्यों प्रकाश होगा, ज्ञान प्राप्त होगा। मन को टिकाने के लिये शुद्ध ज्ञान की आवश्यकता है। पहले मन्त्रों में कर्म से पवित्रता कही गई, और अब ज्ञान से मन प्रकाशित होगा।

सन्ध्या सन्धिसमय

(१) सन्ध्या सन्धिसमय की जाती है। सन्धि का

अर्थ है सुलह—शान्ति। शान्ति के लिये ही सन्ध्या की जाती है। "शन्नो देवी रभीष्टये" शम् उपासक, शम्—शान्ति के लिए प्रार्थना करता है। इससे विदित होता है—कि वह अशांत है। अन्दर युद्ध हो रहा है। तो सन्धि कौन कराता है ? जो दोनों से प्रबल हो, और निष्पक्ष हो, न्यायकारी हो। तो वह प्रभु है। इसकी शरण में दोनों जाते हैं तो सन्धि हो जाती है।

शिखा बन्धन-रहस्य

२— प्रत्येक यज्ञ में यजमान पत्नी—सहित बैठता है। अतः बुद्धि रूपी स्त्री को, चोटी की गांठ देकर, आत्मा अपने साथ बिठाने का नमूना दिखाती है। तथा दोनों प्रभु के सम्मुख बैठते हैं—जो उनका पुरोहित है। अग्नि रूप से पूर्व दिशा में बैठा है।

३— चोटी को जब दाएं और बाएं हाथ से खींचा जाता है—तो दाएं हाथ का प्रकाश (Positive) बाएं का तम (Negative) मिलकर एक अद्भुत विद्युत् पैदा कर देते हैं, जो सुषुम्णा नाड़ी पर प्रभाव करती है जैसे यह तम और प्रकाश मिल जाते हैं, ऐसे ही सन्धि शान्ति आत्मा को हो जाती है।

६—४५ सायं

इन्द्रिय स्पर्श की अंगुलियां

(१) सन्ध्या (ब्रह्म यज्ञ) में इन्द्रिय स्पर्श मध्यमा और अनामिका (इन दो) अंगुलियों से विधान है। इस का आशय यह है—मध्यमा (क्षत्रिय) बल की अंगुली है और अनामिका वैश्य की। वैश्य दान से यश कमाता है, और क्षत्रिय बल से रक्षा करके। अतः इन दोनों अंगुलियों से अर्थात् बल और दान से रक्षा—सेवा करने वाले का बल और यश बढ़ता है। अतः इन दो अंगुलियों से इन्द्रिय स्पर्श किया जाता है।

आसन का लाभ और आसन-मुद्रा के अर्थ

(२) सन्ध्या समय आसन 'सुखासन' लगाया जावे जिससे उससे काम का वेग रुके, तथा ध्यान में सहायता मिले, गर्मी—सर्दी न लगे। हाथों को घुटनों पर रखें, पहली अंगुली अंगूठे की जड़ में लगी हों—ऐसा बैठना चाहिए। तथा हाथों की पीठ घुटनों पर हो। पहली उंगली ब्राह्मण की है—विद्या की। अंगूठा धर्म का है। ब्राह्मण धर्म की शरण में रहे—तो उसको प्रभु की प्राप्ति होती है तथा विद्या और धर्म मिले रहें, तो संसार में शान्ति रहती है। जब हाथों की पीठ घुटनों पर होती है—तो इन भावों से इस स्थान के मेल से ओज पैदा होता है।

१७–६–४० सोमवार ५–३० प्रातः
४ आषाढ़, द्वादशी ज्येष्ठ शुक्ला सं १९६७ वि.

सन्ध्या समय घुटनों पर हाथ रखने का लाभ

यदि किसी को सन्धि–रोग हो–तो सारे हाथ की हथेली से गोडा ढांप लें, तथा अंगुलियां नीचे आ जावें। हथेली में अग्नि होती है–उससे वह स्थान गर्म रहने पर दर्द का आराम रहता है।

२– यदि सुखासन लगे हुए–पांव के टखने पर दोनों हाथों के पंजों को एक दूसरे में जोड़ कर ऐसे रख जावे कि निचला–भाग अर्थात् कनिष्ठि का अंगुलियां उस पर आ जावें–तो दोनों हाथों की शक्ति प्रकाश और तम नीचे के दोनों पावों (टांगों) के प्रकाश और तम पर–इन सबके मिलने से एक ऐसी विद्युत् पैदा होती है–जिससे ध्यान टिकने में बड़ी सहायता मिलती हैं। विचार शक्ति बढ़ती है।

८–३० प्रातः

ज्ञान और भक्ति पूरक हैं

जब ज्ञान से मुक्ति हो जाती है–प्रभु मिलाप हो जाता है–तो फिर भक्ति की आवश्यकता क्या है ? ज्ञान

से केवल तृप्ति नहीं होती, पुष्टि भी नहीं होती। भक्ति से
तृप्त हो जाता है—और वही तृप्ति पुष्टि—बल देती है।
ज्ञान से केवल सौन्दर्य का आनन्द आता है—रस का
नहीं।

१८—६—४० मंगलवार ६—३० प्रातः

५ आषाढ़, त्रयोदशी ज्येष्ठ शुक्ला सं. १९९७ वि.

योगी या भक्त के चार चिन्ह

प्रश्न—योगी या भक्त का कोई निशान भी होता है
जिससे पहचान हो सके ?

उत्तर—चार निशान भक्त या योगी में पाये जाते
हैं। क्योंकि बाहर का प्रभाव अन्दर पर, अन्दर का बाहर
पर, लोगों पर पड़ता है। जैसे अहिंसा वृत्ति के प्रभाव से
दुःखदायी हिंसक पशु भी इस स्थान पर अपना स्वभाव
छोड़ देते हैं।

१— अग्नि=आंखों में तेज, प्रकाश जिसे अधिक
देर तक न देखा जा सके।

२— सोम=जैसे चन्द्र से आह्लाद होता है। चेहरे
पर सौम्यता, होठों पर मुस्कान, जिससे देखने वाले का
चित्त आह्लादित हो जावे, और उठने को जी न चाहे।

३— इन्द्र=सांसारिक पदार्थों—ऐश्वर्य से तृप्त हुआ

प्रतीत हो। आवश्यकता से पूर्व वस्तु विद्यमान हो जावे एवं बात करने में सादा हो, पर वह गहरे रहस्य की हो।

४— प्रजापति : सब आगतो से सन्तानवत् व्यवहार करे।

लगभग ५—१५ सायम्

आचमन रहस्य

प्रश्न—शरीर में अशान्ति कब होती है और मन में कब ?

उत्तर—शरीर में ज़ब कोई विकार हो, रोग हो—तब शारीरिक अशान्ति और मन में ही जब कोई विकार या खोट हो तब मानसिक अशान्ति होती है। तो शरीर से रोग नाश औषधि (दारू) होने से शरीर में शान्ति आयेगी। जल समस्त रोगों की दवा है—'अप्सु मे सोमो अब्रवीत् अन्त विश्वानि भेषजा'। मन से जब खोट दूर हो गया—अर्थात् मन में पवित्रता जब आयेगी तब मन शान्त होगा। जल के भीतर पवित्र करने का गुण है—पर स्थूल शरीर को। उसका स्वभाव और कर्म नम्रता और उपकार करना है—उनका ध्यान रखने से कि जल ही सर्व संसार के प्राण की रक्षा करता है, सबका जीवन—आधार है, तो

ऐसे कर्म करने से अन्तःकरण पवित्र होगा, ऐसा बो
करना चाहिए। जल से मेधा बुद्धि बनती है। इसलि
मेधा के प्राप्त होने पर मनुष्य में नम्रता, उपकार का भ
और खोट दूर होता है।

१९–६–४० बुधवार ५–१५ साय
६ आषाढ़, पूर्णमासी ज्येष्ठ शुक्ला सं० १६६७ वि०

क्रिया प्रभाव, भावानुसार

ऋतुओं का और आठ–पहर के प्रत्येक बद
वाले समय का मनुष्य के शरीर और मन पर दो प्रक
का प्रभाव पड़ता है। एक सामान्य जो सब पर एक जै
होता है। और दूसरा विशेष–जो विशेष पुरुषों पर उन
भावना के अनुसार होता है। इसलिए आचमन
अंग–स्पर्श आदि में भी दोनों प्रकार का प्रभाव होता

२०–६–४० बृहस्पतिवार ६–३० प्र
७ आषाढ़, कृष्ण पक्ष प्रतिपदा सं० १६६७ वि०

भक्त की प्रार्थना

हे परम पिता प्रभो ! मैं जो मन ही मन में
कभी शेख चिल्ली के विचार पकाया करता है,
अहंकार के, कभी लोभ के, कभी मोह के, कभी काम

के दरबार या संघ बना लेता हूं तथा कई–कई मिनट तक उन्हीं राम कहानियों में मस्त हो जाता हूं। आंखें मुंदी हुई तेरे ध्यान में, तेरे पवित्र चरणों का वास लेकर उठता हूं और उधर की वासनायें खेल रचा देती हैं। तू अन्तर्यामी है, साक्षी भी है, फिर तू देख–देख कर मेरी उस असंगत रचना को हंसता रहता है या क्रोधित होता है। मेरी तरह अरबों मनुष्य ऐसे खेल दिन रात में कई बार रचाते होंगे और तू देखता रहता होगा। फिर नाथ! क्या किया जावे कि हम बाज नहीं आते ?

यही प्रतीत होता है कि तू क्रोधित नहीं होता। नहीं तो रूद्र स्वरूप पल में हम सबको विनष्ट कर देवे। हमारा अन्न पानी बन्द कर देवे। हमें शर्मिंदा करे। हमें शर्म लज्जा आवे। पर नहीं। तू शायद हमारी मूर्खता पर हंसता ही रहता है। जैसे छोटा बच्चा अपने माता–पिता के सामने कपट छल भी करता है, गर्व अभिमान भी करता है। उनसे मखोल भी करता है, पर वे हंसते ही रहते हैं। बच्चा तब और अधिक करने लग जाता है और हर दिन ही वह अपना खेल करके दिखाता है।

ऐसी ही अवस्था हमारी मालूम होती है, कि तू बच्चों की न्याईं हमें कुछ नहीं कहता, नहीं तो कम से कम लज्जा तो आती।

हम तो आपको देख नहीं रहे कि हमें लज्जा आवे। वह बच्चा तो अपने माता–पिता को साक्षात् देख–कर करता है, तो जैसे ये माता–पिता पुत्र–प्रेम में पड़ते हैं अनजान बेसमझ जानकर, आप भी शायद हमें अनजान, अपवित्र, मूर्ख जानकर हंस ही पड़ते हों

पिता ! मुझे सुबुद्धि दो कि मैं तेरी सत्ता को (प्रार्थना में नित्य करता हूं) सदा सामने भान करता जिससे कि ये शेख चिंल्ली के विचार न आवें क्योंकि मैं स्वयं किसी दूसरे को अहंकार की बात करते देखता हूं, या किसी का दोष सुनता हूं, या किसी क्रोध करते हुए देखता हूं, लालंच और मोह में फंसा हूं, तो मुझे अवश्य उससे शिकायत होती है और क उसे कह देता, या उसकी शिकायत दूसरों में कर देत

नाथ ! जब मुझे किसी का कार्यक्रम इस ज पसन्द नहीं तो आप मेरे इस मानसिक कर्म को भी से रोकिये जिससे मैं लोगों की दृष्टि में मक्कार भ बना रहूं।

८–१५

इन्द्रिय स्पर्श

यही स्पर्श तो हिपनोटिज्म है। जल में ब

जैसा जल वैसा बल तो प्रसिद्ध है ही। यश जल से ही होता है। प्राकृतिक हरियाली को देखकर मनुष्य यशगान करता है, तो केवल इसी जल के कारण जब जल नहीं बरसता, खेती, वृक्ष, जंगल सब शुष्क और भुश (मुरझाये) मालूम होते हैं और जब जल बरस जाता है, तब हरयावल यश गा रही होती है।

२१—६—४० सांय ६—३० शुक्रवार
८ आषाढ़ द्वितीया कृष्णा पक्ष

इन्द्रिय स्पर्श (सन्ध्या में)

१. वाणी का बल सत्य से, यश प्रिय वचन से। प्राण का बल श्वांस—श्वांस प्रभु स्मरण से और यश बढ़ेगा किसी की प्राण रक्षा करने से। चक्षु बल बढ़ेगा लज्जा से यश होगा मित्र दृष्टि से सब को देखने से। श्रोत्र का बल बढ़ेगा ज्ञान श्रवण से, यश होगा दुःखी का आर्तनाद सुनने से। नाभि का बल बढ़ेगा संयम से, ब्रह्मचर्यसे और यश होगा उत्तम, नेक धर्मात्मा सन्तान उत्पन्न करके देने से। हृदय का बल बढ़ेगा सन्तोष पवित्रता से, यश होगा उदारता और नम्रता से। कण्ठ का बल बढ़ेगा शुद्ध कविता से, यश होगा उत्तम स्वरालाप

से। शिरः का बल बढ़ेगा सुविचार से और यश होगा शि
देने से या विद्यादान देने में। बाहू का बल बढ़ेगा अप
ऊपर भरोसा रखने से और यश होगा दूसरे या पति
को उठाने से। दूसरे का भार अपने ऊपर लेने से
करतल का बल बढ़ेगा हथेली की तरह शुद्ध लेन देन
और यश होगा करपृष्ठे—गुप्त दान से।

२— यह मन्त्र वाक् से प्रारम्भ हुआ और कर पृ
पर पूरा हुआ, अर्थात् कहने से करने तक पूरा होने
बल और यश होगा। वाणी कहे और हाथ कर्म करे
वचन और कर्म अनुकूल हों।

मार्जन मन्त्र

३— (क) शिर की पवित्रता होगी आचार से। ने
आदि ज्ञानेन्द्रियों की पवित्रता होगी सुविचार से। कण
की पवित्रता होगी शुद्ध आहार से। हृदय की पवित्र
होगी शुद्ध व्यवहार से। नाभि की पवित्रता होगा ब्रह्मचर्य
से। पादों की पवित्रता होगी तप से। अर्थात् आधार वि
विचार आहार, व्यवहार के लिए ब्रह्मचर्य और तप की
आवश्यकता है और इन सब का लक्ष्य सत्य की प्राप्ति
जिससे शिर अर्थात् मनुष्य का जीवन पवित्र होता है।
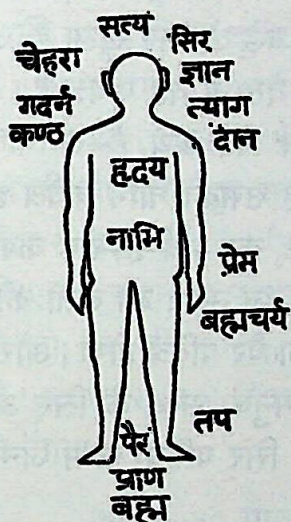
(२१–६–४१ के ८–१५ सायं मार्जन मन्त्र का चित्र)

इसका दूसरा अर्थ भी हो सकता है।

(ख) भूः का अर्थ है प्राण–जो दूसरे के लिए प्राण देगा उसका सिर पवित्र होगा। भुवः का अर्थ है दुःख विनाशक–जो दूसरों के दुःख दूर करेगा उसकी आंख पवित्र होगी। स्वः का अर्थ है सुख स्वरूप–जो अपने कण्ठ बोल से दूसरे को प्रसन्न कर देगा, दूसरों के शोक को हटा देगा उसका कण्ठ पवित्र हो जायेगा।

(ग) महः का अर्थ है महान् बड़ा। जिस मनुष्य क
हृदय सब छोटे बड़े के लिए खुला है, जो छोटों को अप
हृदय में जगह देता है वह पवित्र है।

(घ) जनः का अर्थ है–जननी की तरह सब
पालन करता है उसकी नाभि पवित्र होगी।

(ङ) तपः का अर्थ है–तप करने वाला या द
देने वाला। जो इन ऊपर की बातों की रक्षा के लिए त
करता है उसका पैर पवित्र होगा। और सिर की पवित्र
विद्या है। जो मनुष्य सत्य के लिए अपना सिर तक
देता है उसका सिर पवित्र, जन्म जन्मान्तर पवित्र हैं

८–१५ साय

मार्जन मन्त्र

यदि इस भौतिक शरीर को आत्मिक शरीर ब
दिया जावे तो इस आत्मिक शरीर का सिर तो स
होगा। सत्य की प्राप्ति मनुष्य का लक्ष्य है। चेहरा ज्ञा
ज्ञान से बंधन कटता है–पहचान है। गर्दन कण्ठ–त्या
दान–त्याग से शान्ति मिलती है। हृदय प्रेम दया–प्रेम
मिलाप होता है। नाभि ब्रह्मचर्य–ब्रह्मचर्य तप के आश्र
से है। जिससे शरीर निर्बल न हो। पर तप, तप पर स
स्थिर हैं, सिर स्थिर है। प्राण ब्रह्म–प्राण शरीर में सर्व

है, ब्रह्म सर्वत्र है। यदि मनुष्य १२ वर्ष नंगे पैर रहे, चले तो उसे सर्दी गर्मी, आंख पीड़ा, दृष्टि की निर्बलता नहीं होती। याबंतस (शूगर=प्रमेह) बीमारी वाला मनुष्य यदि चार वर्ष तक नंगे पैर रहे तो उसकी बीमारी दूर हो जाती है। नंगे पैर वाले की जठराग्नि दृढ़ रहती है। पैर की गर्मी सिर में, सर्दी सिर में चढ़ जाती है। पैर ठण्डे होवें तो मर जाता है। इसलिए पैर सदा तपे रहना चाहिए। शरीर में ज्वर चढ़ जाये तो पैर की मालिश से गर्मी सिर की निकल जाती है। अर्थात् सत्य में विकार आ जाए तो तप से वह ठीक हो जाता है।

२५–६–४० प्रातः ५ बजे मंगलवार
१२ आषाढ़ षष्ठी कृष्ण सं० १६६७ वि०

उपस्थान मन्त्र

मनुष्य के अन्दर द्वेष क्या है। दो विरोधी बातें की मैं पाप भी करता रहूं और नाम भी मेरा नेकों में हो। यह है अपने शरीर के साथ राग और आत्मा से द्वेष।

मनसा परिक्रमा मन्त्र

१. महातम–मनुष्य के बंधन की पहली पूर्व दिशा है मोह। इसकी रक्षा करने वाला है आदित्य–धृति।

मोह और धृति दोनों का स्थान मन है।

२. रज तम—दूसरा बंधन है दक्षिण दिशा—लोभ। इसकी रक्षा करने वाला है पितर—सत्संग।

३. रज—तीसरा बंधन है पश्चिम दिशा—काम। इसकी रक्षा करने वाला है अन्न।

४. सत रज—चौथा बंधन है उत्तर दिशा—क्रोध। इसकी रक्षा करने वाला है अशनि।

५. सत्—पांचवां बंधन है—नीचे का अहंकार। इसकी रक्षा करने वाला है वीरुध—नम्रता।

६. पूर्ण सत्—छठी अवस्था में जब सबको अपने वश में कर लेता है—मर्यादा के अनुसार कर लेता है तो बृहस्पति बन जाता है, पूरा सात्विक।।

२८—६—४० प्रातः १०—३०, शुक्रवार
१५ आषाढ़, अष्टमी कृ०

ईश्वरी ज्ञान का लाभ

ईश्वरी ज्ञान का सहयोग ही जीवात्मा को मुक्ति जैसे उच्चपद का भागी बना देता है। यही कारण है कि

मुक्ति का नियत समय समाप्त होने पर इस ज्ञान का सहयोग दूर होते ही जीव फिर अल्पज्ञ रह जाता है। इसीलिए उसे कर्म अनुसार फिर संसार में आना पड़ता है मुक्ति प्राप्त करने के लिए। (आचार्य मुक्तिराम जी लिखित 'सन्ध्या के अष्ट अंग')।

इसके सम्बन्ध में मेरे सामने वृक्ष आम आया। वृक्ष आम एक शरीर है फल उसकी आत्मा है। वह फल वृक्ष के साथ चमटे रहकर नीचे प्रभु की शक्ति जल से रसपान कर बढ़ रहा है। जब वह अवधि पूरी हो जाती है वह फल पक कर अपने आप उस वृक्ष की शाखा से अलग होकर फिर जमीन पर आ पड़ता है। अवधि के पीछे वह रसपान बन्द हो जाता है और फिर गूदा, रस दूसरों के काम आकर खाली गुठली अल्प–शक्ति की दशा में रह जाती है। जो फिर भूमि के गर्भ में जाकर वृक्ष की आकृति में बढ़ती और फल की आकृति में रस प्राप्त करेगी।

२. लगभग ४–५ वर्ष का समय हुआ होगा। करांची में श्री पंडित अमरनाथ जी (प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा) ने कथा में कहा कि दोनों हाथों से सिर में खुजली नहीं करनी चाहिए। मनुस्मृति की कथा करते थे। कारण कोई

वर्णन न कर सके। मैं भी अनेक बार सोचता रहा, कईयों से पूछता रहा परन्तु किसी से वास्तविकता मालूम न हुई।

आज इस समय मेरे दोनों कान बादाम रोगन डालकर रूई के फूंदे दिये हुए थे क्योंकि कान में शायद सूजन हो गई थी। मैंने दाईं तरफ के सिर के भाग में ऊपर नाखून से खुजली की और एकदम मेरा दायां कान भीतर से कड़क होकर खुल गया। झट कड़क होकर बाएं ओर गया तो अब मैंने दूसरी तरफ ध्यान कर खुजली की तो बायां कान जिसमें खुजली की, बन्द था वह भी अन्दर से कड़क पड़ा। वह स्थान जहां मैंने खुजली की वहां से प्राण कान में प्रविष्ट हुआ। अब मैं समझ गया कि जब दोनों हाथों से खुजली की जावेगी तो कानों की शक्ति ग्रहण और त्याग की दोनों की एक साथ पैदा होने से किसी भी कान को फायदा नहीं देती। प्रकाश और तम (Positive and Negative) के साथ कोई शक्ति का ह्रास होता अधिक होता होगा।

३०–६–४० दोपहर १२ बजे रविवार

१७ आषाढ़ दसमी कृष्ण पक्ष सं० १६६७ वि०

दृश्य-सारा दिन प्रभु भक्ति किन को करनी चाहिए

१. जिन्होंने इस जन्म में कोई ऐसा पाप

किया हो, जिससे लोगों को ग्लानि हो या स्वयं उसे लज्जा आती हो और इस जन्म का जीवन नेक जीवन बीता हो पर मन में चञ्चलता रजोगुण हो और शान्ति न हो तथा पूर्व जन्म के निर्बल कुसंस्कार कुवासनाएं भी जागती हों, उनका नाश करने और चित्त शान्त करने के लिए आत्मशुद्धि, भगवत् भजन सततता लगातार तपस्या व्रत रूप से करनी चाहिए।

२. जिन्होंने इस जन्म में ऐसे पाप किये हों जो स्वयं को उनसे लज्जा आती हो और लोगों की दृष्टि में गिरावट हो, उनको भक्ति प्रार्थना जपरूप से बल सहायता के लिए करनी चाहिए। पापों का त्याग करके अन्तःकरण की मैल उतारने के लिए कि अगले जन्म में दण्ड न भोगना पड़े और कुसंस्कार मिट जाएं या निर्बल हो जावें। कर्म, सेवा, उपकार, शुद्ध व्यवहार त्याग और तप से करना चाहिए। जिनका व्यवहार है वे व्यवहार को पवित्र बनावें। अपनी कमाई का भाग यज्ञ दान सेवा में लगावें। जो व्यवहार नहीं करते या नहीं कर सकते उनको सेवा उपकार निष्काम भाव से दिन रात लगन से करनी चाहिए जिससे अभिमान चूर होवे और नम्रता विनीत भाव आवे। द्वेष, ईर्ष्या का त्याग हो और अपने आप को कभी ऊंचा

न समझे। इस सेवा से यदि लोग प्रशंसा भी करें तो भी वह कहे कि मैं अपने पापों के मैल को धोने के लिए करता हूं। मेरा जीवन नहीं है, मैं जीवन बनाने के लिए करता हूं। छोटी से छोटी सेवा करने में भी बड़ा सौभाग्य समझना चाहिए।

३. उपदेश ज्ञान शिक्षा ऊंचा कर्म है। यह उसे देनी चाहिए जो प्रभु भक्ति से बलवान पूर्ण हो जावे। प्रभुदात को पाकर लोगों में पहुंचा दे।

३—४५ बजे सायम्

मनसा परिक्रमा मन्त्र

आदित्या इषवः = आदित्य ब्रह्मचारी ज्ञानी

वितर इषवः = वानप्रस्थी ज्ञानी

अन्नं इषवः = सन्यासी, विषयों पर विजय प्राप्त करने वाले। मन भञ्जक पुरुष जो विषयों को खाते हैं वे भी अन्न हैं। ('सन्ध्या सुमन')।

अशनि इषवः=योगी जो आत्मा को प्राप्त कर चुके। जिनका अपना प्रकाश है, बिजली की तरह।

वीरुध इषवः=ब्रह्म ज्ञानी नीचे से ऊपर उठने वाले।

१–७–४० प्रातः ५–४५ सोमवार,
१८ आषाढ़ एकादशी कृ० संव १९९७ वि०

मर्यादा का उल्लंघन

मर्यादा का उल्लंघन मनुष्य तब करता है जब उसमें अभिमान या प्रमाद आ जावे। प्रमादी मनुष्य तो कठोर हृदय समझा जाता है। कभी–कभी अज्ञान व बुद्धि की कमी के कारण भी मर्यादा का उल्लंघन मनुष्य करता है परन्तु उसे उस मर्यादा का ज्ञान नहीं होता। अभिमानी व्यक्ति कठोर तो नहीं होता परन्तु अभिमान का यही चिन्ह है। स्त्री–पति का, शिष्य गुरु का, पुत्र पिता का, कभी–कभी इस मर्यादा का ही उल्लंघन करने से निरादर कर देते हैं जिसे वह स्वयं निरादर नहीं समझते। ये तीनों स्त्री, शिष्य और पुत्र सिवाय विवशता के या शारीरिक रोग आदि अपने बुजुर्गों की बात को; जब वे बैठे हों या लेटे हुए, सोते हुए सुनते रहें। अधिक समीपी सम्बन्ध होने के और प्रेम होने के कारण स्त्री, पुत्र, शिष्य निरादर नहीं समझ पाते। वास्तव में यह मर्यादा का उल्लंघन है। यह मर्यादा भंग कब होती है ? जब पुरुष पति अधिक कामी हो इसलिये स्त्री उसे अपने

इस विषय वश अधीन समझ लेती है कि मैं इसकी कामना की पूर्ति करने वाली हूं। शिष्य तब ऐसा करता है जब वह यह समझ लेता है कि मैं ही गुरु की अधिक सेवा करता हूं। मैं ही गुरु के जीवन का आधार हूं। पुत्र तब ऐसा करता है जब अपनी कमाई पिता को खिलाता है और पिता कमाने में असमर्थ हो या उसकी अपनी कोई सम्पत्ति भारी या पुत्र से अधिक न हो।

शरीर और मन की शुद्धि

जैसे शरीर का अन्तःबाह्य है ऐसे मन का भीतर और बाहर है। शरीर के बाहर की शुद्धि अंग आदि की, और भीतर शरीर के मल मूत्र और ज्ञानेन्द्रियों के मल की शुद्धि और मन के भीतर शुद्धि सुविचार और बाहर की शुद्धि आहार शुद्ध। आत्म शुद्धि भीतर कर्न आचार और बाहर की शुद्धि शुद्ध व्यवहार।

२–७–४० प्रातः ६ बजे मंगलवार

१६. आषाढ़ द्वादसी कृष्णपक्ष सं० १६६७ वि०

भोजन और भजन

मनुष्य का भोजन रसोई घर में बनता है और वह वह खाकर आनन्द रस लेता है। भोजन बनाने खाने

हले माताएं नित्य प्रति रसोई घर में झाड़ू लगाती हैं
और फिर लेपा पोछा करके उस भूमितल की शुद्धि
रती हैं फिर जिन बर्तनों में भोजन बनाना होता है उन्हें
जती और शुद्ध करती हैं और फिर उन बर्तनों को
नमें परोस कर भोजन खाना है उन्हें भी शुद्ध करती
। इतनी शुद्धी हो जाने के पश्चात् वे आटा गूंदती हैं
र उसे बार–बार रसाती हैं कि वह आटा एक तार हो
ए। इसके पश्चात् तवा पर पकातीं आग सेंक देकर
र खाया जाता है और वह आनन्द देता है, बल देता
जितनी क्रिया भोजन रस आनन्द लेने के लिए रसोई
में की जाती है उतनी ही क्रिया भजन का आनन्द
लेने के लिए भी करनी चाहिए और नित्य प्रति
रनी चाहिए। शरीर एक भज़नशाला (आत्मिक भोजन
रसोईघर) है। इसका झाड़ू और लेपन शौच, दातुन
र स्नान है। इन्द्रिय स्पर्श और मार्जन उन सब बर्तनों
सफाई है जिनमें भजन बनना है। मन वह बर्तन है
समें आटा गूंदना है। आटा तो मन्त्र है और श्रद्धा जल
विधिपूर्वक गूंदना कि जल अधिक न पड़ जाए, पतला
हो जाए, कम न हो कि सूखा रह जाए। श्रद्धा अर्थात्
धि सहित हो और बार–बार अभ्यास से वह मन्त्र

रसता है, एक तार हो जाता है। चित्त वह बर्तन है जि
सब्जी बनाई जाती है जिससे मनुष्य को स्वाद आता
बुद्धि वह बर्तन है जिस पर रोटी पकाई जाती है। म
लिए तो जल श्रद्धा की आवश्यकता है। चित्त और
के लिए अग्नि की आवश्यकता है तप और ज्ञान
है। चित्त के लिए तप अग्नि और बुद्धि के लिए
अग्नि तब वह मन्त्र रूपी रोटी पक जाती है। अहंका
बर्तन है जिसमें परोसकर खाई जाती है। यह अहंका
शुद्ध हो। इस अहंकार की शुद्धि दान, त्याग से होती
जैसे भोजन खाने से पहले आहुति दी जाती है-
अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा—कौए कुत्ते चींटी का
निकाला जाता है। ऐसे ही मन की शुद्धि के लिए
का त्याग, उसकी आहुति दे देनी चाहिए कि यह
प्रभु भजन निमित्त है और भजन आत्मा के निमित्त
तब जाकर उस भोजन से रस आएगा।

इन्द्रिय स्पर्श मार्जन के पश्चात् 'प्राणायाम
तपः"—यह अग्नि है चित्त शुद्धि के लिए और अघमर्ष
पश्चाताप बुद्धि की ज्ञान अग्नि है। मनसा परिक्रमा
में अहंकार को पवित्र करने की, द्वेष अग्नि की
है। इसके पश्चात् उपस्थान मन्त्रों में प्रभु की समीप

कार्य विशेष भजन भोजन होगा।

३-७-४० प्रातः ५-४५ बुधवार,
२० आषाढ़ त्रयादशी कृ० स० १६६७ वि०

प्रकाश का दर्शन

प्रश्न—गायत्री जाप करने वाले यह जो कहते हैं कि हमको प्रकाश दिखा या गायत्री के अक्षर सुन्दर और स्वर्णाक्षरों में लिखे हुए सामने आते हैं—यह क्या बात है?

उत्तर—श्रद्धापूर्वक जो लोग गायत्री का जाप करते आंखें मूंदकर, आसन लगाकर—भर्गः का अर्थ तेज और शुद्ध विज्ञान—पापों को भून देने वाली शक्ति तो अपनी-अपनी अवस्था, पूर्व संस्कारों के अनुसार प्राप्त करते हैं। जो तो रजोगुणी मनुष्य हैं श्रद्धापूर्वक रजोगुणी जप पूजा में बैठते हैं तो शुद्ध राजेगुण के समय में उन्हें प्रकाश या स्वर्णाक्षरों में गायत्री के अक्षर दिखाई देते या भान पड़ते हैं। परन्तु वे इन्हें टिका नहीं सकते। जब सत्तोगुणी वृत्ति वाले श्रद्धा से बैठते हैं। तो उनको कोई प्रकाश या अक्षर दीखते नहीं, उनकी आंखों में ज्योति और मस्तिष्क में शुद्ध ज्ञान, शुद्ध विचार और सूक्ष्म बुद्धि उत्पन्न होती रहती है और हृदय में धैर्य, सन्तोष। तम रज की अवस्था वालों को जप में भोग ऐश्वर्य के विचार आते हैं। तमोगुणी या अश्रद्धा से करने वालों को इस भर्गः का कुछ भी पल्ले नहीं पड़ता।

४—७—४० प्रातः ८—४५ बजे बृहस्पतिवा
२१ आषाढ़ चौदस कृ सं० १६६७ वि०

गायत्री से पवित्रता

साधारण लोग या कुर्क करने वाले प्रश्न करते हैं। गायत्री कैसे पवित्र कर देती है ? कैसे पतित पाव त्रिलोक तारिणी है? या सन्ध्या से कैसे पाप धुल जाते हैं

उन्हें इस उदाहरण से समझना चाहिए। एक मनु को लकड़ी की आवश्यकता है परन्तु उसे स्वयं पहच नहीं है। वह एक ईमानदार और योग्य बढ़ई को साथ जाता है। वृक्ष को देखकर और लोगों ने भी नीलामी बोली दी पर बहुत कम परन्तु उस बढ़ई ने वृक्ष को दे और वृक्ष के तने की मोटाई को भांप लिया, ऊपर गहरी दृष्टि दौड़ाई और कहा कि इस वृक्ष का मूल्य रुपया है। बढ़ई को साथ ले जाने वाला ग्राहक ब चकित हुआ कि ओर लोग तो इस वृक्ष का मोल साधा करते हैं और यह बढ़ई सौ रुपया कहता है। तब बढ़ई कहा कि यह वृक्ष यदि सौ रुपये में मिल जावे तो तुमको बहुत लाभ है। जब इन्जीनियर नीलामी पर प तो उसने सब लोगों से कहा कि यह वृक्ष इस पचास—

रुपये पर नहीं बिक सकता जाओ फिर कभी नीलाम करेंगे। तब और लोग तो अपनी बोली पर नहीं बढ़े परन्तु इस ग्राहक ने पैंसठ सत्तर रुपये कहा परन्तु साहब ने कहा—नहीं, यह वृक्ष एक सौ पच्चीस से कम में नहीं बेचा जायेगा।

ऐसे ही जौहरी स्वयं जिस हीरे को देखकर उसका मूल्य मुख से निकालता है और वह स्वयं उस मूल्य पर लेने को तैयार होता है तो समझो कि वह हीरा कहीं अधिक मूल्यवान है क्योंकि जौहरी की दृष्टि उस हीरे के अन्दर असलियत तक पहुंच चुकी है। उसने इस दृष्टि को बड़े अभ्यास के पश्चात् प्राप्त किया है। इसी प्रकार बढ़ई ने वृक्ष की माप से जान लिया कि इसमें से इतने शहतीर, इतनी कड़ियां और इतनी चौखटें निकलेंगे और उनका मूल्य इतना होगा। तब उसने मुख से सौ रुपये मूल्य बोला।

ऐसे ही जिन दीर्घ दृष्टि ऋषियों ने जन्म जन्मान्तर की तपस्या और मन्त्रों के लगातार वर्षों तक मनन करने से उनके रहस्य को जाना। उन्होंने तब लिखा। अब इन लोगों की भूल है जो इस प्रकार की शंका या संशय करते हैं। उन्हें भी स्वयं अभ्यास करके लाभ उठाना चाहिए।

१–७–४० दिन के बारह बजे रविवा
२४ आषाढ द्वितीया शुक्लपक्ष सं० १९९७ वि०

मन कड़ा कीजिये

वाह रे मन ! तेरी प्रशंसा क्यों न करूं ? तू मुझ
बड़ा प्यार करता है और तू चाहता है कि अभी कई जन्
में तुम्हारा साथ न छोड़ूं। क्या खूब ! तेरा प्यार तो ऐ
है जैसा एक सुयोग्य पुत्र को I.C.S. (आई०सी०एस
की परीक्षा के लिए विलायत जाने का यात्रा व्यय मि
गया हो और पासपोर्ट भी पर उसकी मां चाहे कि न पु
तू यहीं रह जा। हमसे अलग न हो। हम तेरे बिना कै
जीवेंगे ? पुत्र कहे कि मां, इस समय सरकार मुझ प
प्रसन्न है और सब कुछ अपने कोष से देकर भेज रही है
मैं डिप्टी कमिश्नर (=उपायुक्त) बनकर आ जाऊंगा। फ
मां कहे, न पुत्र। 'ठण्डी छाया और मीठी भूख' सरक
यदि तुझ पर प्रसन्न है तो छोटी मोटी तहसीलदारी ले ले
फिर अपने आप कभी यहीं ही डिप्टी कमीश्नर बन जान

मेरे प्यारे (मन) ! आज तो सचमुच तुझे ऐसे ही
रहा हूं। इस व्रत में दो बार सुअवसर प्राप्त हुआ तो तू
मोह के बहाने निराश कर दिया। वरदान मिलता
मिलता पर आए सुअवसर को तो अपने हाथ से

वाता। अच्छा ! तेरी मर्जी ! मेरा तो बाबा तुझ पर क्या
ज़ोर है, तू बड़ा शक्तिशाली है। आगे पीछे लोगों में पत
इज्जत) रखवाने के लिए तू बड़ा आज्ञा पालक बना
हता है। परन्तु जब प्रभु के और दिव्य ज्योतियों के
सामने कोई छुटकारे की बात और साधन बनता है तो
झट वहां अपना मोह का फन्दा डालकर शर्मिंदा कर देता
। मोह ही तो बड़ा बन्धन है। इसके साथ लगे रहने से
प्रभु की वह दात कैसे मिल सकती है चाहे और बरकतें
अनगिनत भी मिल जावें। पहले मैंने कभी भान नहीं किया।
अब मैं विचार करता हूं कि प्रत्येक व्रत में प्रभु की कृपाओं
के अतिरिक्त ऐसी कृपा भी अवश्य आई होगी। पर तेरा तो
यही हाल होता होगा। जब पिछले दिनों बड़ी अमृत वर्षा के
दिन कृपा होने लगी तो यही फन्दा डाल दिया और थोड़ी
देर बाद बेर के दाने के बराबर ओला गिरने लगा तो उसी
समय ओले को देखकर मैंने कहा कि यह चिन्ह है मिलकर
न रहने का। तब मैंने महसूस किया दुःख के साथ। परन्तु
उस समय मैं इसका कारण न समझा। अब तो आज
साक्षात् तुझे इसका कारण बना हुआ पाया।

प्रभु देव ! अब आप ही अपने आश्रित की रक्षा करो
लाज रखो। मुझे परीक्षा में मत डालिए। या इस मन को
कड़ा कीजिये।

८—७—४० ग्यारह बजे सोमव
२५ आषाढ़ तृतीया शुक्लपक्ष सं० १९९७ वि०

सफल जीवन

मनुष्य का जीवन पांच तत्वों से बना है। इसमें प
कर्मेन्द्रियां हैं। संसार में जितने भी काम हो रहे हैं वे प
प्रकार के ही हैं, चाहे वे बुरे हों या भले। पांचों तत्व
करके संसार का उपकार करते हैं और आंख वाले
लिए वे शिक्षा का नमूना हैं। इसी रीति से परमात्मन्
ने पांच कर्मेन्द्रियों को बनाया है। इन तत्वों में अग्नि त
प्रधान माना जाता है, जो श्रेष्ठ और शुचि है। मनुष्य
शरीर में वाणी प्रधान क़र्मेन्द्रिय है। इसलिये यदि मनु
ऊंचा और श्रेष्ठ, सबका मुखिया बनना चाहता है
अग्नि का गुण, ऊपर को जाना, धारण करे। वाणी
ऐसे शुभ कर्म करे जिससे उसकी ऊर्ध्वगति हो। नी
योनियों में न जाना पड़े। इसलिए इसकी वाणी कर्मेन्द्रि
में सबसे ऊपर है।

मनुष्य के शुभ अवसर का महत्व इसी वाणी से

२. दूसरी कर्मेन्द्रिय है हाथ। यह तमाम शरीर
फैल सकते हैं और सबको अपने साथ मिलाकर
लगा सकते हैं।

तत्वों में आकाश का गुण है फैलाना। समस्त देव इस आकाश के सहारे परोपकार कर रहे हैं। ऐसे ही ये हाथ आर्थिक, शारीरिक, मानसिक, सेवा से अपने से अतिरिक्त सब प्राणियों की सेवा कर सकते हैं।

३. इसके नीचे मूत्रेन्द्रिय–जिसका काम है भीतर के मैले पानी को नीचे गिराना। तत्वों में जल का गुण है नीचा बहना। मनुष्य को जन्म–मरण के चक्कर में डालने वाले दुष्टाचार को यदि मूत्र की तरह नीचे फैंक दें तो जीवन शुद्ध हो जावे।

४. इसके नीचे है गुदा–जिसका काम है अन्दर के मल को इकट्ठा समेट कर निकालना। पृथ्वी तत्व का गुण है इकट्ठा करना समेटना। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के शास्त्र विरुद्ध, निषिद्ध, बाह्य विषयों को समेट इकट्ठा कर त्याग देना।

५. सबसे नीचे हैं पैर– जिनके सहारे यह शरीर है। इनका काम है चलना। तत्वों में वायु सब संसार को उठाये हुए है और इसका काम भी है चलना। पैर मनुष्य के सदा संसार के उपकार के लिए जीवनदान देने के लिये और प्रभु के धाम के प्रति यात्रा करते रहें तो मनुष्य का जीवन सफल रहे।

१०—७—४० प्रातः ४ बजे बुधवार,
२७ आषाढ़ पंचमी शुक्ल पक्ष सं० १९९७ वि०

ईर्ष्या के शिकार

दो सन्त साधु या साधक, भक्त जब एक स्थान पर इकट्ठे नहीं रह सकते, एक दूसरे से ग्लानि करते हैं या पीठ पीछे एक दूसरे की निन्दा करते हैं तो उनमें यह दुर्गुण ईर्ष्या के कारण है। ईर्ष्या दो अवगुणों से उत्पन्न होती है—एक काम और दूसरा लोभ। ये दोनों अवगुण हैं और पशुओं में भी नीच पशु कुत्ते के हैं। कुत्ता जब काम वश कुतिया के पीछे लगता है तो दूसरे को भोंकता है। अपने पास नहीं फटकने देता। ज़ब कुत्ते को कोई रोटी डाले तो दूसरे कुत्ते को खाने नहीं देता—उससे लड़ता है। कुत्ते को जो लोभ केवल खाने को होता है और सन्त को लोभ खाने का भी होता है और मान का भी। जहां दोनों कुत्ते तगड़े हों वहां उनकी लड़ाई छिड़ जाती है और प्राप्त वस्तु दूसरे उठा ले जाते हैं। वह लड़ते-लड़ते उस प्राप्त वस्तु से दूर तक पहुंच जाते हैं। वह वस्तु उनसे छूट जाती हैं। पर जहां एक निर्बल होता है तो वह भौंक कर या मार खाकर एक तरफ दौड़ जाता है। बस ऐसा ही हाल दो साधकों या सन्तों का होता है।

अति मोह का फल

(२) कान तो सब पशुओं के हिलते हैं और सब आवश्यकता पर हिलाते हैं, पर हाथी बेचारा चौबीस घण्टे अपने कान को हिलाता ही रहता है। इतना बड़ा बलवान और जंगल का मुखिया होकर चैन नहीं लेता। इसका कारण यह है कि उसे अपने शरीर का बड़ा मोह है और मौत से बहुत डरता है। उसकी मृत्यु का कारण एक क्षुद्र मच्छर सा होता है, जो वायु के एक फूंके से दौड़ जाता है। इसलिए प्रभु ने हाथी को छाज जैसे कान दिए। आंखें छोटी और कान बड़े। पिछले जन्म में हाथी के कर्म अति मोह के हुए हैं। मोह वाला मनुष्य बहुत ही क्षुद्र हृदय वाला और क्षुद्र दृष्टि वाला होता है और अहंकार बड़ा होता है। इसी कारण आंखें छोटी और दिल कमज़ोर और सूंड बड़ी, और कान बड़े पाये।

दृढ़ता की आवश्यकता

(३) जिन लोगों को तरक्की या अच्छे काम करने की उमंग बड़ी खुशी से होती है, और जब उस काम में प्रवृत्त होते हैं तो उन्हें बड़ी दूभर मालूम होती है और अन्त में समाप्ति पर बड़े ही खुश होते हैं। इसका क्या कारण है ?

भावना तो नेक मगर संकल्प निर्बल। आत्म–विश्वास न होने से ऐसा होता है। जब वह काम उन्हें समझ में आ जाता है, जो प्रारंभ में समझ न आने से घबराहट होती थी या कष्ट का सामना न कर सकते थे, वह समझ आ जाने पर समाप्ति तक पहुचने पर प्रसन्न होते हैं।

६ बजे प्रात

अहं भाव

बुद्धि ब्राह्मण है, मन क्षत्रिय (राजा), चित्त वैश्य और अहंकार शूद्र है। बुद्धि गाय है, मन घोड़ा, चित्त बैल बकरी और अहंकार भेड़, ऊंट है। घोड़े को जब अच्छे प्रकार सिधाना हो कि अच्छे प्रकार चले तो उसे चतुर घुड़सवार के पास सिखाने, सिधाने को दिया जाता है। घोड़ा अच्छा चलने वाला भी बन जावे तब भी बिना लगाम से काबू किए टेढ़ी चाल चल देता है। इसलिए मन को अश्व कहा गया है जो फारसी भाषा में अस्प कहा गया। बुद्धि को वैदिक परिभाषा में गऊ भी कहते हैं। चित्त चंचल है दूर–दूर की स्मृति कराता है। वैश्य दूर–दूर जाता है, दूर–दूर की सूचनाएं और पत्र प्राप्त करता है। बकरी क़ायर और दौड़ती कूदती है और जब चाहो उसे दोह लो। उसे भोग चाहिए। वैश्य कायर और

हर स्थान पर दौड कर जाने वाला और भोग ऐश्वर्य की मांग वाला होता है। (उससे) दान जब चाहो ले लो। वैश्य बैल भी है, सब कमाई करता है, सब लेखं बही खाते कर्म के चित्त ही वैश्य की तरह रखता है।

इन सब में शूद्र अहंकार है। अहं भाव से ही सब सेवा होती है। शूद्र ही पकाने वाला, शूद्र ही मजदूरी करने वाला, मकान बनाने वाला, जूते बनाने वाला आदि। सब काम मैं ही करता हूं जो कहता है वहीं अहंकार है। शूद्र ही सब काम करता है।

मनुष्य व देवता

१. मनुष्य कब मनुष्य बनता है ? जब उसमें नम्रता आए, उदारता आए।

२. देवता कब बनता है ? जब उसमें इन गुणों के अतिरिक्त सरलता और पवित्रता आए।

३. स्कूलों में लड़कों को सिखाया जाता है कि In a line (एक पंक्ति में हो जाओ)। जब भी अध्यापक को प्रबन्ध करना पड़े कि लड़के आराम से सभ्यता से जावें या आवें तो यही आज्ञा करता है। ये नियम सभ्यता के लिए है और वह सभ्यता क्या है ? नेता की आज्ञा मे

चलता। यही सभ्यता है। परन्तु अध्यापक इस भाव को लड़कों में भर नहीं देता। यदि अध्यापक बच्चों के मस्तिष्क में अच्छे प्रकार यह बात बिठा देवें तो फिर वे अपने आप सभ्य बनते जावें।

दिन के १—५५ बजे

त्याग पूर्वक भोग

मनुष्य के मन की इच्छा कुछ और होती है, वाणी से कुछ और वर्णन कर देता है और मिलता फिर कुछ और का और है। मनुष्य दिल से तो अधिकता चाहता है और वाणी से शान्ति। कहता है कि शान्ति मिले पर मिलती है विक्षिप्तता। मनुष्य के मन की इच्छा शान्ति की तब हो सकती है जब उसे आत्मा से हित हो। मन तो आत्मा की परवाह नहीं करता, फिर शान्ति की इच्छा कैसे कर सकता है? इन्द्रियां विषयों से तृप्त ही नहीं होती। तृप्ति ही मन को प्राप्त नहीं, तो शान्ति कहां मिले।

जितना भी लेशमात्र सुख मिलता है वह भी इन्द्रियों को है, न मन को है, न आत्मा को। यदि मन शान्ति चाहे तो पदार्थों में क्यों ढूंढे? या भोग में क्यों फंसे।

जब बहुतायत चाहता है तब वह पदार्थों की अधिकता है। बहुतायत में अवश्य फंसना पड़ता है। कहावत है—थोड़े में सो जला (प्रकाश) और बहुती (अधिकता) में अन्धेरा। शान्ति का मार्ग है "तेनत्यक्तेन भुंजीथाः" (यजुर्वेद ४०—१)।

११—७—४० प्रातः ४—३० बजे बृहस्पतिवार,
२८ आषाढ़ सप्तमी शुक्लपक्ष सं० १९९७ वि०

कर्मक्षेत्र

प्रश्न—बीज तो एक दिन बोया जाता है और जल बहुत बार देना पड़ता है।

उत्तर—सुकर्म एक बीज है वह तो कभी करना चाहिए, उसकी पुष्टि के लिए भक्ति बहुत करनी चाहिए।

प्रश्न—कर्म पर जोर क्यों दिया जाता है? कोई कहते हैं श्वांस—श्वांस प्रभु में लगना चाहिए। कौन सी बात सही है ?

उत्तर—जिस मनुष्य के पास भूमि बहुत हो और अकेला आदमी हो तो उसे सब भूमियों को आबाद रखने के लिए प्रतिदिन बीज बोना पड़ेगा, तब वह कहीं पूरा पहुंचेगा। कृषकों के पास इतनी—इतनी भूमि है कि उनसे

बहुत सी खाली रह जाती है, सारी नहीं बीज सकते। तब मनुष्य के शरीर को एक भूमि मान लिया जावे तो उसमें नाड़ियों को क्यारिया मान लिया जावे। नाड़ियां ७२७२७२२०६ हैं और मनुष्य का श्वांस जिसे बैल के नाम से कहा गया है, यदि इन्हें कर्म और भक्ति में रोजाना जोते रखें कि सब नाड़ियों की सिंचाई हो जाए तो सारी आयु एक सौ वर्ष में पूरा कर सकेगा। दिन रात चौबीस घन्टों में २१ हजार छः सौ श्वांस मनुष्य लेता है और वर्ष के ३६५ दिन होते हैं। अब यदि इसमें से सोने के और भोजन आदि अन्य कार्यों का समय निकाल लिया जावे तो एक सौ वर्ष भी पूरे न हों। इसलिए कर्म रूपी बीज बहुत बोना चाहिए और भक्ति रूपी जल भी लगाए रखना चाहिए और ज्ञान की बाड़ हो।

८—४५ प्रातः

पांच शक्तियां

दृश्य—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार ये पांच शक्तियां अलग—अलग भी हैं अर्थात् इनका अपना रूप (अस्तित्व) भी है और कई दूसरे के किसी कारण से भी पैदा हो जाते हैं। काम, मोह और अहंकार अपने बलवान अस्तित्व के स्वामी हैं। क्रोध दूसरों के साथ भी मिल

जाता है। सबका अपना प्रभाव अलग–अलग है।

(१) जब मोह के कारण क्रोध उत्पन्न होता है तब ज्ञान प्रकाश ज्योति क्षीण होती है। स्याही या अन्धकार सामने आ जाता है।

(२) जब लोभ के कारण क्रोध उत्पन्न होता है तब ऐश्वर्य, सम्पत्ति पर इसका प्रभाव पड़ता है। तब यह कोई पालिसी अथवा टेढी चाल मन में उत्पन्न करता है।

(३) जब काम के कारण क्रोध उत्पन्न होता है तब श्रेष्ठता को नष्ट करता है।

(४) जब क्रोध स्वयं स्वभाव सिद्ध उत्पन्न होता है तब मनुष्य अपनी ही सौम्यता पर प्रहार करता है।

५) जब अहंकार के कारण क्रोध उत्पन्न होता है तब दृढ़ता, गंभीरता का त्याग होकर शरीर कम्पायमान और वाणी थथलापन और मैत्री भावना नहीं रहती। क्रोध का अपना अस्तित्व भी है और दूसरों का शस्त्र भी बनता है।

(६) मोह से जब लोभ उत्पन्न होता है तो उदारता और पवित्रता नहीं रहती। दुईपन आ जाता है।

१२—३० दि

कपड़े की कटाई और सिलाई

जब दर्जी या कोई और मनुष्य कैंची से कि कपड़े को काटता है तो कैंची की एक आंख में उसव अंगूठा और दूसरी में मध्यमा तथा अनामिका अंगुली हो है। न तो पहली अंगुली और न ही कनिष्ठा से का जाता है। दोनों अंगुलियां क्षात्र और वैश्य शक्ति की अर्थात् बल और धन दोनों मिलकर धर्म के सहारे काट हैं। ब्राह्मण और शूद्र में ये गुण नहीं पहले का स्वभा नहीं और दूसरे का साहस नहीं। यदि दर्जी इस बात व ध्यान रख लेवे कि मैं कपड़े को धर्म और न्याय के जो पर काट रहा हूं, हर एक कतर में धर्म की सहायता है फिर उससे कपड़े में पाप न हो सके।

(तारीख १२—७—४०.का सांय ८ बजे का प्रक भी यहीं लिखा जा रहा है—अनुवादक)।

जब दर्जी या कोई मनुष्य कपड़े की सिलाई कर है या मिलाता है तो अंगूठा और तरजनी (पहली) अंगु में पकड़ कर करता है। काटने में बल और धन आवश्यकता थी, पर मिलाने में ब्रह्म शक्ति, धर्म, विद्या बुद्धि, धर्मोपदेश की आवश्यकता होती है। किसी अल

हुए को मिलाना या किसी छिद्र को भरना सात्विक काम है, जो ब्राह्मण बुद्धि का है।

१२--७--४० प्रातः ३ बजे शुक्रवार
२६ आषाढ़ अष्टमी शुक्ल पक्ष सं. १९९७ वि.

न्याय से कमाएं

मनुष्य जब मुख को धोता है और आंखों को मलने लगता है तो बांई आंख में पहली अंगुली (ब्राह्मण की) और दूसरी दांयी में अंगूठा धर्म का लगाता है तो इससे अच्छे प्रकार और आसानी से धोई जाती है। आज मुझे धोते समय दृष्टि इन अंगुलियों पर जा पड़ी और विचार आया कि आह ! क्या शिक्षा मिलती है। दांई आंख में ऋषि विश्वामित्र और बांई में जमदग्नि रहते हैं। बांई आंख ब्राह्मण अंगुली से धोई जाती है। ब्राह्मण का गुण विद्या तप है। विद्या के होने से ही मनुष्य के भीतर दया का भाव उत्पन्न हो सकता है। विद्या से ही विश्वामित्र बन सकता है। दांई अपने लिए है—अपने अर्थ (प्रयोजन) के लिए है, तो इसे अंगूठा से धोना अर्थात् कमाई करने वाली आंख धर्म से धोई, धर्म से कमाई करने वाली हो। पराये हक में कभी भी अधर्म से दृष्टि न करे।

प्रातः ८

पाप का पश्चाताप प्रायश्चित्

जैसे शरीर को उष्णता लगने से भीतर से पसी
और मल बाहर निकलते है। ऐसे ही तप करने से मन
मैल निकलती है। यदि शरीर के भीतर से निकले प
और मल को पोंछकर साफ न कर लिया जावे
साबुन या मिट्टी आदि से स्नान करके उतार न वि
जावे तो वह पसीना और मल शरीर के बाहर जम
खुजली उत्पन्न कर देते हैं।

ऐसे ही यदि साधक मनुष्य के तप करने से
दुर्गन्धि व मल, दूषित कर्मों के सामने आवें तो उ
रुदन, अति रुदन और व्याकुलता के जल से दूर
देना और धो लेना चाहिए। साबुन मिट्टी आदि लगा-
करने का तात्पर्य यहां उस निकली हुई मल को
पर किंचिन्मात्र न रहने देने का है। तप के समय जो
पुराने सामने आवें उन्हें उनकी बुरे परिणाम वाली
को ज्ञान रूपी साबुन से नष्ट कर देना चाहिए। जि
वह पाप जम न जावे अर्थात् वही पाप फिर न हो।

यदि किसी की वस्तु अनुचित रूप में अपना ली

और अब उसका पाप मालूम होकर पश्चात्ताप होता है, तो उस वस्तु को वापिस कर देना चाहिए। यदि वापिस न किया गया तो वह पाप रूपी मल तो वैसे ही रह गई उसका परिणाम सामने नहीं आया तो यह रोना भी व्यर्थ चला जावेगा और तप भी। दण्ड का दुःख भी भोगना पड़ेगा। यदि किसी से व्यभिचार किया है, तो उसका पश्चाताप रोना तो पूंछ देना है। मन से मल को दूर करना नहीं।

उस पाप को प्रकट कर देना चाहिए कि मुंझसे यह पाप हुआ, जिसका मैं अब पश्चात्ताप करता हूं और जिससे दुराचार किया वह मेरी माता है। जाकर उससे माता रूप से बर्ताव करे। यदि किसी को किसी से व्यभिचार करने की कामवासना उत्पन्न होती है तो अपने उस बुरे भाव को उसी माता पर प्रकट कर दे। उसे भी माता पुत्री का रूप देकर बर्ताव करे।

तप में रोना पश्चांताप करना तो आत्म निरीक्षण से होता है। इसके अतिरिक्त ज्ञान कीं अत्यन्त आवश्यकता है। सही ज्ञान यही है कि उसे या उस गलती से बचने के लिए सादगी और सत्यता का रूप दिया जावे, बिना किसी लज्जा, भय और संकोच के। यदि लज्जा भय

संकोच रहा तो अभी सत्य का ग्रहण करना न होगा क्योंकि आत्म निरीक्षण करते हुए भी उसे अपनी प्रतिष्ठा के गिरने का अभिमान रहा। सत्य और तप का (घनिष्ठ) सम्बन्ध है। तप है इसलिए कि इसमें सत्य प्राप्त हो। तप अर्थात् त=तेज और प=प्रकाश, तेज और प्रकाश की प्राप्ति हो।

नोटः- मूल उर्दू डायरी में इससे आगे 'सांय ८ बजे' का लेख है। वह लेख पीछे ता० ११-७-४० के १२-३० बजे वाले शीर्षक में सम्मिलित कर लिया गया है-हिन्दी अनुवादक।

१४—७—४० प्रातः २—३० बजे रविवार
३१ आषाढ़ दशमी शुक्लपक्ष सं. १९९७ वि.

दूरदर्शन और अनुवीक्षण

साधक मनुष्य जब प्रत्येक कार्य को दूरबीन (बुद्धि) और खुर्दबीन (मन) के द्वारा देखता है तो उसे एक छोटे से छोटा पाप भी खुर्दबीन (अनुवीक्षण) से बड़ा भारी दीखने लगता है। उस पाप की गति और बढ़ने का अनुमान उसकी हलचल से वह लगाता है। तो फिर जब दूरबीन (दूरदर्शन) लगाता है, और देखता है तो उसे

भयंकर रूप सामने आ जाता है कि--(१) इस पाप का बदला पाने के लिए मुझे एक जन्म तो अवश्य लेना पड़ेगा। (२) इस पाप के कुसंस्कार से दूसरे जन्म में भी मुझे वैसा पाप और घेर लेगा। (३) इस पाप के प्रत्यक्ष कारण से मैं दण्ड भोगूंगा। मेरा जीवन दुःख और कष्ट में आ जावेगा। (४) मेरे माता पिता यदि धनाढ्य हुए--बड़े मान वाले हुए तो उनकी धन--सम्पत्ति नष्ट होगी--उनका बड़ा अपयश होगा और मेरे मस्तक पर कलंक का टीका लगा रहेगा। (५) यदि मेरी आयु बहुत थोड़ी हुई तो मां बाप को उनके सामने यौवन में (=मेरे) मरने का दुःख अति दुःखदाई होगा। (६) यदि मेरा जीवन उस जन्म में और भ्रष्ट और पतित होगा तो फिर और अनेक जन्म लेने पड़ेंगे। (७) यदि मेरे जन्म (=अर्थात् अगले) का वायुमंडल अच्छा हुआ और मेरी आयु कम हुई तो मुझे पश्चात्ताप रहेगा किं कुछ कमाई न कर सका।

इस प्रकार जो साधक विचारपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता है तो उपासना से शुद्ध की हुई मन की खुर्दबीन और ज्ञान से पवित्र की हुई बुद्धि की दूरबीन (जिसकी चर्चा विचार विचित्र पुस्तक में ३१--१--३६ पर कर्म ज्ञान और उपासना का फल खुर्दबीन और दूरबीन पिन्ड की आब्जरवेटरी में है) के प्रयोग से पाप से दूर

और पुण्य कर्म के समीप अपना जीवन पथ व्यतीत कर
है और उन्नत हो जाता है।

(मूल डायरी में इससे आगे ६ बजे प्रातः का ज
लेख है वह आगे १७–७–४० के संख्या २ के साथ लिख
गया है–अनुवादक)।

१५–७–४० प्रातः १०–२० सोमवा
१ श्रावण एकादशी शुक्लपक्ष सं. १६६७ वि.

योगी का दिन और रात

संसार में जितने प्राणी हैं, उन सब में प्राण लेने
समानता है सिवाय वृक्षों के। वृक्ष कार्बन लेता है औ
मनुष्यादि आक्सीजन (शुद्ध वायु)। एक दूसरे के उल
हैं। वृक्ष उलटे सिर किये हुए अपनी माता की गोद में
और मनुष्य का सिर आकाश में है। मनुष्य दिन क
भोजन खाता है, और वृक्ष रात को। व्यावहारिक मनु
दिन को अच्छा समझता है कमाई के लिए और प्रभु भ
योगी तपीश्वर रात को अच्छा समझता है कमाई के
लिए। जैसे मनुष्य दिन को कार्बन निकालता है, ऐसे
भीतर के बुरे विचार भी आकाश में फैलाता है। रात्रि
वह सो जाता है और उसका मानसिक विचार, सांसारि
विचार बन्द हो जाता है। जैसे रात में वृक्षों के नीचे कार्ब

(=अशुद्ध वायु) जमा रहती है, ऐसे ही आकाश में रात को सब बुराईयों के विचार घूमते रहते हैं।

योगी, जिसने अपने प्राण, संकल्प और दिल व दिमाग को प्रभु के चरणों में अर्पण किया हुआ होता है और रात्रि (जिसका अर्थ है—रा=प्रकाश, त्रि=रक्षा करने वाली) जो प्रकाश की रक्षा करने वाली है, उस समय रात्रि में प्रकाश के दूतों का पहरा, भक्त के बाहर लग जाता है और कोई भी बुरा विचार वहां फटकने नहीं पाता। यदि बुरा विचार आए तो कुचला जाता है।

योगी ईश्वर भक्त का काम भी अपने सिर को माता (ईश्वर) की गोद में दे देना है। योगी समाधि में अपनी वृत्तियों (मस्तिष्क) को हृदय में लगा देता है। जैसे रात्रि में आंख ऊपर करने पर अनन्त सृष्टि दृष्टि आती है, ऐसे ही समाधिस्थ योगी को अपनी आंख ऊपर को उलट देने पर अनन्त प्रकाश युक्त प्रभु की लीला का भान होता है।

१७—७—४० प्रातः ५—३० बुधवार,
३ श्रावण त्रयोदशी शुक्लपक्ष सं. १६६७ वि.

आनन्द-ज्ञान से और अज्ञान से भी

बच्चे के लिए मां आनन्द की मूर्ति है और भक्त के लिए प्रभु आनन्द स्वरूप है। उसे समस्त आकाश मंडल

आनन्द से उछलता हुआ दिखाई देता है।

मां बच्चे को स्तन देती है तो बच्चे को आनन्द, गोदी में सुलाती है तो आनन्द, लोरी देती है तो आनन्द, थपकती है तो आनन्द, छाती से लगाती है तो आनन्द, मुख को चूमती है तो आनन्द, बगल में लेती है तो आनन्द, सिर पर उठाती है तो आनन्द, हाथ फैला कर लेना चाहती है तो आनन्द, जब बच्चे से मुस्कराती है तो आनन्द, बातें करती है तो आनन्द। सब समय बच्चे को आनन्द ही आनन्द आता है।

ऐसे ही भक्त को भगवान की समीपता और भगवान की सब क्रीड़ाओं में उसे आनन्द आता है। भगवान का पूजन करें तो आनन्द, यज्ञ करे तो आनन्द, प्रार्थना करे तो आनन्द, स्वाध्याय करे तो आनन्द, किसी दीन दुःखी की सेवा करे तो आनन्द, किसी अतिथि को खिलावे तो आनन्द, ग्राहक से बात करे तो आनन्द, नकद लेवे तो आनन्द, उधार देवे तो आनन्द। भक्त का चेहरा, प्रभु की प्रसन्नता से और आनन्द से भरपूर और उछल रहा होता है।

बच्चे के और भक्त के आनन्द में अन्तर यह है कि बच्चे को मां आनन्द देती है, और भक्त स्वयं भगवान से आनन्द लेता है। दूसरा, भक्त की प्रत्येक दशा में आनन्द

है। बच्चे को मां जब मारती है तो उसे आनन्द नहीं आता, परन्तु भक्त को जब भगवान ताड़ना करते हैं, तब भी उसे (भक्त को) आनन्द आता है।

यह अन्तर है ज्ञान और अज्ञान का।

(ता० १४—७—४० का ६ बजे प्रातः वाला लेख)

पाप कर्मों के फल

भोग के पाप कई प्रक़ार के होते हैं।

एक तो पाप वे हैं, जिनका बदल शरीर की बीमारियां, दूसरे पाप वे हैं, जिनसे बुद्धि की मलीनता तीसरे पाप वे हैं, जिनसे मन की विक्षिप्तता, अशान्ति, चौथे पाप वे हैं, जिनसे अपयश, कलंक और जाति, समाज, सरकार से दण्ड।

(अब १७—७—४० का संख्या २ वाला लेख नीचे है)

२. अपने शरीर (को) या दूसरे प्राणियों—पशु मनुष्य आदि को कष्ट देकर अर्थात् उनको मजदूरी और खुराक देकर उससे अधिक काम लेकर धन सम्पत्ति उत्पन्न करने वाले को शारीरिक रोग लगते हैं। (उन रोगों में) अपने शरीर की कमाई का धन भी खर्च होता है, दवाई और फीस, आये गये की सेवा पर। वह कष्ट और अधिक काम लेना—(यह उसके) भाव और कष्ट के परिणाम

पर निर्भर है। जैसा और जितना खर्च होता है उतना और वैसा फल मिलता है।

लोभ से की हुई कमाई वाले को बुद्धि मलीन मिलती है। क्रोध से किए पापों से मन का बुरा चिंतन जैसे दूसरे की अवनति में प्रसन्नता (तथा) ईर्ष्या द्वेष के भाव वाले को मन की अशान्ति और विक्षिप्तता प्राप्त होती है। काम और मोह के अधीन किए पापों का फल अपयश और दण्ड है।

प्रातः ६—४०

सुख और आनन्द में अन्तर

चूंकि आकाश आनन्द से भरपूर है इसलिए यह दो प्रकार में बंट जाता है। आकाश में सब संसार (माया) भी है और प्रभु भी है तो संसार में जो आनन्द पाया जाता है, उसका नाम तो बन जाता है सुख। इसका अर्थ है इन्द्रियां और शरीर अर्थात् जो आनन्द इन्द्रियों और शरीर को प्राप्त होता है, वह सुख कहलाता है। और जो आत्मा को परमात्मा से प्राप्त होता है उसका नाम आनन्द है।

अन्तर क्या है ? संसार के सुखों में तृष्णा और वासना बढ़ती है, इसलिए उससे दुःख उत्पन्न होता है

परन्तु आत्मिक आनन्द में तृष्णा और विषय वासना समाप्त हो जाती है, इसलिए वह आनन्द स्थायी आनन्द हो जाता है, बिना दुःख की मात्रा के।

१६—७—४० प्रातः ३ बजे शुक्रवार
५ श्रावण पूर्णमासी सं० १६६७ वि०

मोह ईश्वर विश्वास में बाधक है

जब भी कोई मनुष्य, सांप को सामने आया देख कर, अथवा अन्धेरी रात या जंगल का स्थान जानकर, उसे सांप से भय आने लग जाता है, तो यह केवल इसलिए कि उसके शरीर को डस न ले, उससे उसको मौत या कष्ट न हो। वह शरीर के मोह के कारण ईश्वर से विश्वास तोड़ बैठता है। मोह ईश्वर विश्वास के तोड़ने का बन्धन है।

दूसरा, जब कोई मनुष्य अनुचित रूप में किसी से छल, असत्य, कपट से कमाई करता है, तो यह लोभ वृत्ति के कारण होता है और लोभ के कारण वह ईश्वर विश्वास तोड़ बैठता है। न उसे अपने पूर्व कर्मों पर विश्वास है, न प्रभु पर।

प्रातः ८—३० बजे

पवित्रता के साधन

देवताओं के दो काम हैं—एक पालन—पोषण और दूसरा पवित्र करना। पृथ्वी की मिट्टी उन वस्तुओं को पवित्र करती है जिनमें पार्थिव भाग अधिक है और जल उन पदार्थों को पवित्र करता है जिनमें जलीय भाग अधिक होता है। अग्नि उनको जिनमें सूर्य, चन्द्रमा का भाग अधिक जैसें सोना, चांदी आदि धातुयें शरीर में अधिक भाग पानी का है, इसलिये जल से ही पवित्र होता है। परन्तु बुद्धि को पवित्र करने के लिए परमात्मा के नाम की आवश्यकता है।

७ बजे सायम्

अमर होने की इच्छा

प्रश्न—एक मनुष्य जो अच्छे भोग भोगता है, वह मरना नहीं चाहता और एक गधा जिसे पीठ पर घाव हुआ है,—कीड़े किलबिला रहे हैं, कौवे तंग क़र रहे हैं, कूड़ा करकट चर चुर कर गुजारा करता है वह भी मरना नहीं चाहता। यदि यह योनि उसे भोग की दृष्टि से बुरी होती

तो वह मरना पसन्द करता। तब फिर मनुष्य को क्या आवश्यकता है कि अपने ऊपर कर्त्तव्यों, नित्य कर्म, नेक कर्मों का बन्धन रखना पड़े ? कोई भी योनि जो उसे मिल जावेगी, भोग और न मरने की इच्छा सब में समान रूप से रहती है।

उत्तर—पशु और मनुष्य में भोग का आनन्द तो तुल्य है ही, वह तो है शरीर इन्द्रियों का। परन्तु जो इच्छा न मरने की है, वह है आत्मा की। दोनों में आत्मा है। पशु की यह इच्छा कि कभी न मरूं तभी पूरी होगी जब तक कि वह मनुष्य का जन्म न ले ले। जो जन्मा है वह मरेगा अवश्य तब ऐसी इच्छा वह कभी पशु योनि में पूरी नहीं कर सकता। इसका उपाय है, बुद्धि पूर्वक कर्म। ऐसी बुद्धि मनुष्य को ही प्राप्त हुई है। इसलिये मनुष्य जन्म की इच्छा, और मनुष्यों में भी उत्तम श्रेष्ठ मनुष्य बनने की इच्छा, और इसके लिये कर्म करना चाहिए जिससे वह इस इच्छा को पूरा करके कभी न मरने वाला अर्थात् अमर हो जावे।

२. प्रश्न—कोई मनुष्य छः फुलके खाने से तृप्त हो जाता है, कोई दो तीन खाकर तृप्त हो जाता है। दोनों जीवित रहते हैं और वजन भी बराबर है। क्या यह आदत पर निर्भर है या क्या ?

उत्तर—मनुष्य के जीवन को स्थिर बनाये रखने वाले तो प्राण (हवा) और जल हैं और अन्न है बल देने के लिए, पुष्ट करने के लिए। जीवन जिसने दिया है उसी ने उसका भोजन सबके लिए बराबर उत्पन्न कर दिया है और बिना मूल्य। शेष अपनी इच्छा है कोई पहलवान बनना चाहे—कोई शक्ति उत्पन्न करे या न करे। उस इच्छा के अनुकूल ही उसे साधन प्राप्त करना पड़ेगा। जितना कोई थोड़ा खाता है, उसका मल कम बनता है, और अधिक खाने वाले का मल अधिक बनता है इसलिए वजन बराबर रहता है।

२०—७—४० प्रातः ८ बजे शनिवार
६ श्रावण एकम् कृष्ण पक्ष सं० १६६७ वि०

उदारता

मां बाप की सम्पत्ति अपने पुत्रों के लिए होती है परन्तु कभी—कभी मां उस बच्चे से वस्तु छिपा लेती है जो बच्चा चटोरा—डाकू होता है, अपने बहन भाईयों से भी खोस लेता है। जब मां किसी दूसरे बच्चे को वस्तु देने लगे तो वह देखकर झट झपटा मार कर उससे छीन लेता है। ऐसे बच्चे के सामने वह न तो देती है, और

देने लगे और उस डाकू बच्चे को आता देख ले तो फिर छिपा लेती है।

ठीक ऐसे ही, वह हमारी मंगलमयी माता (=प्रभुदेव) अपने उत्तम वस्तु ज्ञान को भी उन मनुष्यों से छिपा लेती है जो बड़े जबरदस्त डाकू और लुटेरे अर्थात् मलिन बुद्धि हैं। अन्यथा उस प्रभु का ज्ञान अपने इन सब पुत्रों के लिए ही होता है। हां जो बच्चा मां से वस्तु लेकर, बिना मां के कहे ही, थोड़ी–थोड़ी सब बहन भाईयों को बांट देता है, और आप पीछे खाता है, तो वह बच्चा मां को अधिक प्यारा लगता है। फिर तो मां उसे ही सब वस्तुयें देती है कि वह अकेला तो खाता नहीं, इसको देने से सब बच्चों को मिल जायेगी। ऐसे ही वह प्रभु अपना ज्ञान अपने उस अमृत पुत्र भक्त को प्रदान कर देता है।

२१–७–४० प्रातः ६–४५ रविवार
७ श्रावण द्वितीया कृष्ण पक्ष सं० १९९७ वि०

अभ्यास से मन बांधा जाए

किसी घोड़े या पशु को बांधना हो तो खूंटे (=कीले) के साथ बांधा जाता है, परन्तु उस कीले को भी पहले बनाना–घड़ना ही पड़ता है। बिना घड़े हुए कीले के

घोड़ा, पशु नहीं बंध सकता। फिर उस घड़े हुए कीले के
भी भूमि के भीतर गाड़ना होता है अर्थात् उस खूंटे क
भाग जो घड़ा गया है, वही भाग भूमि के अर्पण होता है
फिर उसे मजबूत (=पक्का) करने के लिए ऊपर
बार-बार डंडा, हथौड़ा मारा जाता है। जब वह मजबू
हो जाता है तब उससे घोड़ा बांधा जाता है। फिर उ
घोड़े के गले में भी रस्से की आवश्यकता होती है, त
वह बंध सकता है, अन्यथा नहीं। जितना बल वाल
बेगवान घोड़ा होता है उसके अनुसार ही रस्सा औ
खूंटा बनाया जाता है। यदि घोड़ा उद्दंड और रस्
साधारण हो या खूंटा साधारण हो तो घोड़ा वश में न
आयेगा।

ऐसे ही, मन रूपी घोड़ा अति बलवान उद्दंड
इसके गले में रस्सा तो अति श्रद्धा, उत्कट श्रद्धा का
और बुद्धि रूपी खूंटा ज्ञान से शोधा हुआ, बनाया हु
हो। जैसे खूंटा वृक्ष का अंश है और वृक्ष भूमि माता
उत्पन्न हुआ है, यह खूंटा भूमि माता की शरण लेता
ऐसे ही बुद्धि भी सुसंस्कृत हो अपने देवता की शरण
जाए जो सविता है, सावित्री माता है। इस बुद्धि
खूंटे को बार-बार अभ्यास, उपदेश, सत्संग (=स्वाध्
के डंडे से मजबूत=दृढ़ किया जाए कि वह अपनी

के चरणों से अलग न हो, हिले ही न। तब घोड़ा (=मन) बांध दो तो वह वश में रहेगा। मन वैसे कभी नहीं बांधा जा सकता।

२२—७—४० प्रातः ५—५० सोमवार
८ श्रावण, तृतीया कृष्ण पक्ष सं० १६६७ वि०

पांच ज्ञानेन्द्रियां ब्राह्मण हैं

मनुष्य के शरीर में मुख ब्राह्मण माना गया है। मुख से अभिप्राय पांच ज्ञानेन्द्रियां ब्राह्मण हैं। इन पांचों ब्राह्मणों की श्रेणियां इस प्रकार हैं—त्वचा तपीश्वर हैं, जिह्वा जपीश्वर है, नासिका योगेश्वर है, श्रोत्र मुनीश्वर है, और चक्षु ऋषीश्वर है।

"मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी कैसे है ?"

(२) प्रश्न—मनुष्य क्यों न अपने स्वास्थ्य को बनाये रखने या बल बढ़ाने के लिए मांस अंडा खाये ? जब वह सर्वश्रेष्ठ प्राणी है तो सब सृष्टि इसके लिए बलिदान होनी चाहिए। मनुष्य का जीवन बड़ा मूल्यवान है और यह सब इसकी प्रजा है, इसी के लिए तो है।

उत्तर—मनुष्य शरीर के विचार से तो महान् नहीं

है। मनुष्य तो जब मानव न केवल आकृति या रंग रूप से अपितु (=बल्कि) बुद्धि और चरित्र से मानव बन जावे तब वह सब सृष्टि में महान् और श्रेष्ठ है। तब उसका जीवन मूल्यवान है।

जब मानव मानव बना नहीं तो उसका जीवन किसी भी मूल्य का नहीं। पशु का तो फिर भी मूल्य पड़ेगा क्योंकि वह पशु का काम देता है, करता है, परन्तु मनुष्य कौड़ी मूल्य का न होने से पशु से भी घटिया है। बल्कि ऐसा मनुष्य तो, जो मानव न बना, पशु के लिए बलिदान कर दिया जावे तो उचित होगा।

२४—७—४० प्रातः ६ बजे बुधवार
१० श्रावण पंचमी कृष्ण पक्ष सं० १६६७ वि०

सत्य का व्रत

पवित्र यजुर्वेद अध्याय १६ मंत्र ३०—

ओं व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम् दक्षिणाश्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते।।

य० १६—३०।।

साधक का जप—तप व्रत केवल सत्य की प्राप्ति सत्य के दर्शन के लिए होता है। परन्तु सत्य को प्राप्

करने के लिए श्रद्धा की आवश्यकता है। श्रद्धा त्याग के बिना उत्पन्न नहीं होती, और त्याग सत्य उपदेश ज्ञान से आता है। ज्ञान के लिए व्रत की आवश्यकता है।

(२) मौन व्रत से मनुष्य की वाणी में बल आता है, जो तत्काल प्रभाव करता है। यदि वह मौन सत्य से हो तो नम्रता उत्पन्न करता है। यदि मन में असत्य हो और वाणी में मौन, तो कठोरता उत्पन्न करता है।

२५–७–४० दिन के ११ बजे बृहस्पतिवार
११ श्रावण षष्ठी कृष्णा सं. १६६७ वि.

मौन का महत्व

मनुष्य का प्रारम्भ भी मौन से है, और समाप्ति भी मौन है। जब कोई मनुष्य प्रश्न करता है तो उससे पहले वह मौन होता है। जब प्रश्न का उत्तर मिलता है और सन्तुष्ट हो जाता है, तो भी मौन हो जाता है।

२६–७–४० प्रातः ३ बजे सोमवार
१५ श्रावण दशमी कृष्णा सं. १६६७ वि.

वानप्रस्थ की सफलता

वानप्रस्थियों को छः बातों की आवश्यकता है जिनसे उनका आश्रम सफल हो।

(१) **शरीर की नीरोगता**—जंगलों में एकान्त सेवन से शुद्ध जल, शुद्ध वायु, शुद्ध आहार के मिलने से शरीर नीरोग रहता है। (२) शरीर के पश्चात् **इन्द्रियों की संयमता**-गृहस्थाश्रम में इन्द्रियां अपने अपने विषयों में घूमती रहीं। अब उन पर धीरे—धीरे वश रखने का साधन करना है। (३) **चित्त को प्रभु की स्मृति**, और संसार के झंझटों से **विस्मृति** में अभ्यास करना। (४) मन में सत्य निष्ठता। (५) बुद्धि की **निश्चयात्मकता**। (६) ब्रह्म विद्या के लिए **आत्म-समर्पणता**।

(२) वानप्रस्थियों की अवस्था (=दशा) दरिया (=बड़े नद) की सी होती है—(१) जैसे दरिया से नहरें (=नहरें) नाले निकल कर खेतों को सींचते हैं—(२) दरिया स्वयं भी सींचते हैं। (३) वे दरिया लगातार बहते हुए समुद्र में जा मिलते हैं।

ऐसे ही वानप्रस्थी अपने ज्ञान अनुभव रूपी जल को शिष्यों, ब्रह्मचारियों, विद्यार्थियों को दान देते हैं और सत्संग द्वारा लोगों के संतप्त हृदयों की भूमि को तृप्त शान्त करते हैं। अपना लक्ष्य ब्रह्म प्राप्ति बना रखते हैं।

३०—७—४० प्रातः ४—३० मंगलवार
१६ श्रावण एकादशी कृष्ण पक्ष सं० १६६७ वि०

अवगुण-दुर्गुण का भेद (=अन्तर)

मनुष्य में दुर्गुण और अवगुण होते हैं। अवगुण तो मनुष्यत्व से पतित करने वाले होते हैं और दुर्गुण परमात्मा से दूर ले जाने वाले होते हैं। अर्थात् दूर=कठिनाई से प्राप्त होने योग्य। अव=नीचे, पतन down ले जाने वाले गुण। मनुष्य से नीचे पशु की योनि है।

(२) गुण क्या है? जो परमात्मा तक पहुंचाये और दुर्गण क्या है ? जो परमात्मा से दूर हटाये। गुण तो समीप करने वाला—दया और न्याय हैं।

मन में दया और बुद्धि में न्याय हो तो ये गुण देवताओं के होते हैं। परमात्मा देवहितम् है—दिव्य—गुण वालों की सहायता करता है और हित करता है।

दुर्गुण वह है जो इन दोनों के विपरीत हो—मन वचन कर्म एक न हो अर्थात् अहंकार ही दुर्गुण है। जब तक अहंकार है तब तक प्रभु प्राप्ति नहीं हो सकती।

अवगुण—काम क्रोध लोभ मोह का अनुचित प्रयोग अर्थात् रागद्वेष ईर्ष्या अवगुण हैं।

३१–७–४० प्रातः ४ बजे बुधवा
१७ श्रावण द्वादशी कृष्ण पक्ष सं० १९९७ वि०

कृपणता से ज्ञान-कर्म-भक्ति निस्तेज

अवगुण वाली दो प्रकार की भूमि होती है–कृप
और कृतघ्न। कल्लर वाली भूमि तो कृतघ्न है, अ
पथरीली भूमि कठोर कृपण होती है। कल्लर वाली भू
में जितना बीज बोओ, दान करो, वह लेकर चट क
जाती है–प्रत्युपकार नहीं करती। अपने ऊपर बिना हरिया
(रूपी) धन्यवाद के सफेदी चपट–कुष्ट रोग की त
उभारती है। पथरीली भूमि कोरा शंख की तरहं कृपण–
कुछ घास तक भी दान न करे–चींटी तक भी उ
लाभ न पा सके।

(२) कृपण मनुष्य की मन रूपी भूमि कठोर है
है। मन की यह कठोरता कृपणता के स्वभाव से उत्प
होती है। जो लोग शरीर से तो काम लेते हैं परन्तु
तृप्त नहीं करते–उत्तम–उत्तम पदार्थों के रसों से
सींचते नहीं, उनके हृदय कठोर बन जाते हैं। वे दूसरे
लिये भी कृपण हो जाते हैं।

कृपण मनुष्य की कमाई–धन सम्पत्ति जैसे

फल देने वाली नहीं होती, निस्तेज होती है, ऐसे ही कृपण मनुष्य की भक्ति और ज्ञान तथा कर्म भी निस्तेज होते हैं।

"यज्ञ का स्वरूप"

ओं ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नभो रक्षितृभ्यो नम् इषुभ्यो नम एभ्योऽस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।

(३) यज्ञ करने वाले को पहले यज्ञ का स्वरूप अपने भीतर जमा लेना चाहिए और यज्ञ के स्वरूप पर विचार करके उसका भान करना चाहिए।

'यजो वै विष्णुः' यज्ञ का स्वरूप विष्णु है। विष्णु है तो सर्वत्र किन्तु उसे मौलिक, अधिपति बनाया गया है ध्रुवा दिशा का—निश्चल स्थान। यज्ञ करने वाले की बुद्धि निश्चल हो जाती है। वह निश्चयात्मक बुद्धि का अधिपति—मालिक बन जाता है। वीरुध इषवः—उसका स्वभाव सदा नमन का बना रहे, सिर झुका रहे। झुका रहने का स्वभाव—कल्षमाषग्रीवः अर्थात् अकड़ी गर्दन—अहंकार से अपनी रक्षा करने वाला होता है। यज्ञ

करने वालों में यह स्वभाव नम्रता–नमन का कहां से उत्पन्न होता है ? स्वाहा–त्याग भाव से और इदन्न मम=ममत्व के अर्पण कर देने में। यज्ञ कौन कर सकता है ? जो कृपण न हो, कठोर न हो, दया और न्याय को जानता हो।

१–८–४० प्रातः ६–३० बृहस्पतिवार
१८ श्रावण त्रयोदशी कृ० सं० १९९७ वि०

"पवित्र और नेक कमाई का भेद"

प्रश्न–क्या मजदूरों और किसानों की कमाई पवित्र होती है और उससे खाने–पीने वाले का मन पवित्र होता है?

उत्तर–मजदूरों की कमाई तो पवित्र होती है परन्तु प्रायः उनकी भावनाएं पवित्र नहीं होती। मजदूर अबसर मिल जाने पर चोरी भी कर लेते हैं। किसी की पड़ी वस्तु भी उठा लेते हैं। उनकी भावना यह भी रहती है कि वे अपनी कमाई को न खावें, और स्थान से मिल जाए तो अच्छा है। मजदूर की कमाई लाचारी से पवित्र होती है।

पवित्र कमाई वह है जो पवित्र भावना और सन्तोष से कमाई जावे। किसान लोग भी पवित्र कमाई करते तो

हैं किन्तु उनकी भावना भी पवित्र कम होती है। गाय बैल को चारा कम देते और काम अधिक लेते हैं। मजदूरों से काम अधिक लेते और मजदूरी कम देते हैं। इसी प्रकार दुष्ट कमाई भी वह होती है जो अशुद्ध भावना से और दूसरे की हानि की भावना से की जाती है।

एक दुकानदार सिग्रेट बेचता है, पेट्रोल बेचता है, शराब बेचता है। उसकी यह नीयत नहीं कि वह दूसरे को हानि पहुंचावे। वह तो केवल अपनी आय के लिए ऐसा करता है। उसकी और कोई गर्ज (इच्छा) नहीं होती। इसलिए उसकी कमाई तो दुष्ट नहीं, यदि वह इसमें सत्य और सन्तोष बरतता है। हां काम अपवित्र है।

२—८—४० प्रातः ८ बजे शुक्रवार
१६ श्रावण चौदश कृ० सं० १६६७ वि०

अन्तःकरण की शुद्धि

(सम्बन्धित आगे २६—१०—४० का ६—२५ बजे वाला)

प्रश्न—अन्तःकरण की शुद्धि कैसे हो ?

उत्तर—अन्तःकरण चार भागों में विभक्त है—मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार। मन की शुद्धि तो श्रद्धा से और

बुद्धि की विश्वास से और चित्त की तप से और अहंकार की त्याग से होगी। इन सबका साधन ज्ञान, कर्म, उपासना है। बुद्धि में विश्वास बिना ज्ञान के नहीं आ सकता। त्याग और तप कर्म में ही होता है और मन में श्रद्धा न हो, भक्ति न हो तो कर्म हो नहीं सकता। इसलिए यज्ञ कर्म अन्तःकरण की शुद्धि का अद्वितीय साधन है।

निर्बल और बलवान विषय

(२) क्रोध–द्वेष दो प्रकार का होता है–एक निर्बल दूसरा बलवान। निर्बल क्रोध वह होता है कि क्रोध आने पर या द्वेष रंज या नापसंदीदगी होने पर मुंह पर तो न कहना, न सामने कुछ कर सकना। पीठ पीछे निन्दा चुगली करनी।

बलवान क्रोध–गाली गलोच देकर मार–पीट करके अपना क्रोध निकालना। ऐसे ही काम, लोभ, मोह, अहंकार भी निर्बल और बलवान दो प्रकार का होता है।

निर्बल काम–एकान्त में बैठे हुए या सामने रूप देखकर काम का वेग चढ़ जाना। एकान्त हो तो विचारों के द्वारा काम चेष्टा में व्यस्त होना। सामने हो तो व्याकुल होना किन्तु भय या लज्जा के कारण क्रिया रूप

में साहस न कर सकना—निर्बल काम कहलाता है।

बलवान काम—विचार आने पर अन्धा हो जाना, कुछ न सूझना, नेकी, इज्जत, मान, लज्जा, भय का बिल्कुल विचार न करना। हठपूर्वक इच्छा को पूरा कर लेना।

निर्बल लोभ—खाने पीने की वस्तुओं में अधिक लालच से खाना—अपने घर या दूसरे के घर में। मान यश की इच्छा में किसी की गाली गलौच की परवाह न करना, निर्बल लोभ कहलाता है।

बलवान लोभ—धन सम्पत्ति का लालच। दूसरे को लाभ हो या हानि, अपने कार्य और मान की धुन में रहता है।

निर्बल मोह—दूसरों से खाने पीने, लेने की इच्छा रखना, अपने पुत्र—परिवारों को बचत देना। अपने परिवार की बढ़ती का विचार लगा रहना किंतु स्वयं न करना या न कर सकना।

बलवान मोह—पुत्र, परिवार शरीर में लिप्त रहना उनके माध्यम से थोड़े से दुःख में अति व्याकुल हो जाना। उनके लिए अपना सब कुछ—धर्म, ईमान, समय रोटी भी कुर्बान कर देना।

निर्बल अहंकार—अपनी प्रशंसा को सुन कर प्रसन्न होना और दबे शब्दों में अपनी प्रशंसा को प्रकट करना।

बलवान अहंकार—अपनी तुलना में किसी को कुछ न समझना। अपनी ही सब शक्ति और गुणों का जोश (=विशेषता या महत्ता) सदा दिखाये रखना।

३—८—४० रात्रि ८ बजे शनिवार
२० श्रावण अमावस्या सं० १९९७ वि०

परीक्षा

मानव की मानवता का पता रेल में शीघ्र लगता है जबकि स्टेशन पर गाड़ी पहुंचती है और यात्रियों को चढ़ने में व्यवहार किया जाता है—भीतर वाले क्या कैसा व्यवहार करते हैं।

४—८—४० प्रातः ८ बजे रविवार
२१ श्रावण शुक्ला एकम् सं० १९९७ वि०

पुरुषार्थ और ईश कृपा

मनुष्य आंख खोले तो सूर्य का प्रकाश प्राप्त कर सकता है किन्तु खुली आंख भी प्रभु की दी हुई ज्योति

के बिना देख नहीं सकती। ऐसे ही कान आदि। मनुष्य का पुरुषार्थ कभी सफल नहीं होता, जब तक प्रभु की कृपा सहायता साथ न हो। प्रत्येक कार्य में यही दृष्टांत है।

आंख का खोलना मनुष्य का पुरुषार्थ है, और भीतर की ज्योति प्रभु की दात है। यदि दात न हो तो पुरुषार्थ निष्फल जाता है।

६–३० सायम्

नमन ही नमन

प्रश्न–प्रभु के प्यारे साधु महात्मा लोग सदा, जब भी बैठते हैं, सिर झुकाये, आंखें नीचे किये रखते हैं। इसका क्या कारण है ?

उत्तर–महान् आत्मायें सदा नमन का उपदेश देते हैं, स्वयं नमन रहते और अपने हृदय में ही (आत्म निरीक्षण) देखते रहते हैं।

किसी की आकृति को देखकर वें अपने मन को विचलित करना नहीं चाहते। देखने से ही मनुष्य को ग्लानि और चाह होती है और लोग उसी व्यक्ति से ही सामान्य बातें करने लगते हैं जो आंख सामने रखने वाले

हों। गर्दन झुकाए हुए पुरुषों का ओज ऐसा होता है कि दर्शनों पर भी चुप्पी की मोहर लगाए रखता है। इसलिए वह महात्मा अधिक बोलने, अधिक सुनने और निन्दा स्तुति से बचे रहते हैं। जितना अधिक मौन हो उतना विचार और प्रभु स्मरण अधिक होता है।

५–८–४० प्रातः ५–३० सोमवार
२२ श्रावण द्वितीया शुक्लपक्ष सं० १६६७ वि०

कब मोह कब प्रेम

ज़ो मनुष्य किसी की आकृत्ति को देखकर प्रसन्न होता है उसे उससे मोह हो जाता है जो किसी की नेक आदतों को देखकर प्रसन्न होता है उसे उससे प्रेम हो जाता है। यदि किसी की आकृति और आदत दोनों आकर्षित करने वाली हैं तो जिससे पहले आकर्षण हुआ वही अधिक बढ़ेगा–प्रेम या मोह।

६–८–४० प्रातः ८ बजे शुक्रवार
२५ श्रावण षष्ठी शुक्ला सं० १६६७ वि०

(सम्बन्धित २१-११-४० आगे)

लड़की कुंवारेपन में अपने मां–बाप के घर में न सेविका का दर्जा रखती है, न स्वामिनी मालिक का। वह

केवल शिक्षा के लिए माता पिता के घर जन्म लेती है जिससे वह गृहस्थ आश्रम चलाने के लिए निपुण हो जावें। माता पिता का कर्त्तव्य श्रेष्ठ भी यही है कि उसे पूर्ण माता गृहपत्नी बनने की शिक्षा देवें।

(२) संसार में जितने भी पदार्थ उपकार करते हैं वे सब बढ़कर ही उपकार करते हैं। बिना बढ़े कोई भी उपकार करने के योग्य नहीं होता। मनुष्य भी बढ़कर ही उपकार कर सकता है मगर मनुष्य का बढ़ना गृहस्थ आश्रम से ही गिना जाता है। इसी से वह उपकार करने लगता है।

१४—८—४० प्रातः ६—५० बुधवार
३१ श्रावण द्वादसी शुक्ल पक्ष सं० १६६७ वि०

(यज्ञ के निमित्त व्रत)

यज्ञ हवन-एक बीमा

हवन यज्ञ एक बीमा है उसकी प्रत्येक आहुति किस्त है, जो दी जाती है। जिस—जिस उद्देश्य के लिए आहुति दी जाती है उसी के लिए वह जमा होती है और होता को उसी रूप में प्राप्त होती है। बीमा कं० वालों ने

भी नियम बनाया हुआ है कि बीमा कराने वाला जो जै
भाव रखे और फार्म में भर दे वैसी ही उसको अन्त
प्राप्ति होती है। एक व्यक्ति ने तो साधारणतया जीव
का बीमा कराया। हजार दो चार या लाख रुपये। वै
ही किश्तें देता रहा। मरने के पीछे उसके उत्तराधिकारि
को वह सारा रुपया मिल जाएगा। किसी ने जीवन
स्वयं लेना किया--दस बीस साल इत्यादि का। किसी
बीमा ऐसा किया कि उसे उसकी दीये बीमा का लाभ
मिले, निश्चित किये बीमा की रकम भी और साथ
उसको ऐसा भी पालिसी में बनाया कि उसे कुछ रक
जीते जी मिल जाएं और फिर शेष रहा धन उस
उत्तराधिकारियों को मिले और कुछ बढ़ाया कि इत
भाव का अमुक दान फण्ड को (धर्म खाता को) मिले
एक ही बीमा के भीतर सबकी किश्तें देता हुआ सब ची
प्राप्त कर लेता है।

ऐसे ही हवन यज्ञ में कई आहुतियां तो ज्योति प्र
आदि के लिए दी जाती हैं। कई बुद्धि के लिए,
संसार के साथ सम्बन्ध बनाने के लिए, कई दुःख निवृ
और कई सुख पूर्ति के लिए, कई पापों और पाप
कारणों को दग्ध करने के लिए, कई विज्ञान और ऐ

की प्राप्ति के लिए, कई परमात्मा की प्राप्ति के लिए इत्यादि दी जाती हैं। जो भी अग्निहोत्री श्रद्धा के अर्थों और मर्म को जानकर और अपना उद्देश्य पवित्र भावना बनाकर आहुति देता है और प्रेम श्रद्धा और विधि सहित देता है, उसे वे सब चीजें जिनके लिए वह अन्त में स्वाहा कह कर अपना मनोभाव प्रभु के सामने प्रकट करता है, प्राप्त होंगी।

११–१५ बजे दिन

नम्रता की महराब

मकान का निर्माण करते समय बरामदा बनाने वाले तरखान (खाती) दो प्रकार से बनाते हैं। एक तो दो खम्भे बनाकर उन पर शहतीर या गार्डर रखकर ऊपर निर्माण करते जाते हैं, और बुद्धिमान कारीगर शहतीर और गार्डर के खर्च को बचाने के लिए ईंटों की डाट बना देते हैं, जो बहुत ही कम खर्च की होती है। पीछे उस डाट पर तामीर (चिनाई) करते जाते हैं। यह ईंटों का डाट (=महराब) टेढ़ा और झुकावदार होता है। इसी झुकाव के आश्रय पर तामीर होती जाती है।

ऐसे ही आध्यात्मिक भवन–जीवन बनाने के लिए

आसान और बिना खर्च का तरीका यही है कि नम्रता धारण कर ली जावे। बस नम्रता पर ही सारा जीवन का निर्माण हो जावेगा।

(२) तीन मित्र थे। और तीनों बुद्धिमान थे, पर एक दूसरे की बुद्धि को न मानने वाले। अपनी-अपनी बुद्धि को सही समझते थे। दो-दो सौ रुपया पास था। वे कहीं गए। वह स्थान उनको पसन्द आ गया रहने के लिए। संयोग से एक कारखाना नीलाम हो रहा था, और लोग भागीदार बन रहे थे। उस कारखाने में एक बड़ा बगीचा था फलदार। एक रमणीक कुआं और धान्य, तेल, कपास, आटा की मशीनें लगी हुई थीं। बहुत से मकान, निवास, कार्यालय बैरके और खाली भूमि भी बिक रही थी। और किराये पर भी मिलते थे।

एक मित्र ने कहा—मैं तो किराये पर मकान लेता हूं, कारखाने में सुरक्षित रहूंगा। कुआं छाया और आबादी, रोनक भी है। रुपया भी बना रहेगा और अपना भी प्रयोजन हल कर लूंगा। थोड़ा सा किराया देना पड़ेगा।

दूसरे ने कहा—मैं तो इसमें एक बना हुआ मकान खरीद लेता हूं—१५०) रुपये में मिलता है। अपनी जायदाद

बन जावेगी। जब—जब भी चाहूंगा यहां आकर रहा करूंगा। किसी की अधीनता नहीं होगी। ५०) रुपये शेष हैं, निर्वाह के लिए रख लेता हूं।

तीसरे ने कहा—भई मैं तो कारखाने का भाग खरीद लेता हूं। कारखाना एक लाख रुपये में नीलाम हुआ तो इसने दो सौ रुपये देकर पूरे कारखाने में भाग रख लिया, चाहे वह रुपये में आध—पाई से भी कम था। अब वह भी कारखाने में रहने लगा, किरायेदार भी और मकान खरीदने वाला भी। मगर किरायेदार तो अपने आपको कारखाने का मालिक नहीं कह सकता, न उसके लाभ में उसका सम्बन्ध है। मकान खरीदने वाला भी कारखाने को और कारखाने के लाभ को अपना नहीं कह सकता है। किन्तु तीसरा व्यंक्ति बगीचे में, कुआं और कार्यालय में, क्वार्टर्स में और मशीनों में बल्कि उस बड़े कारख़ाने की परिधि के ईंट—ईंट में अपने आपको मालिक कहता और समझता है। कारखाने में उन दो की तरह रहता हुआ मालिक की तरह रह रहा है और सब फल और लाभ नौकर चाकरों से उठा रहा है।

ऐसे ही बड़े यज्ञों में अपना भाग मिलाने से सारे यज्ञ के पुण्य—फल लाभ का भागीदार बन जाता है। जो

केवल आहुति देता है, बिना अपने दिए हुए दान के, वह तो किरायेदार की तरह है।

जो केवल दान दे देता है वह मकान का खरीददार है और जो दान भी देता है व्रति बनकर आहुति भी देता है अपने हाथ से, वह पूरे कारखाने के भागीदार व सामान, यज्ञ के सर्वश्रेष्ठ फलों का भागीदार बनता है।

२२—८—४० प्रातः ४—४० बृहस्पतिवार
७ भाद्रपद पंचमी कृष्ण पक्ष सं० १९९७ वि०

उपासना कर्म बिना पूर्ण नहीं

एक करोड़पति की स्त्री उसके साथ रहते हुए पूर्ण सम्पत्ति की स्वामिनी है। यदि पति के सहयोग से कोई फल प्राप्त नहीं किया तो पति के अलग हो जाने पर उसका अधिकार केवल निर्वाह मात्र ही रह जाता है। यदि फल हो तो समस्त सम्पत्ति की स्वामिनी रहेगी।

ऐसे ही परमात्मा का भक्त यदि प्रभु के सहवास में कोई फल प्राप्त न कर सका तो वह परमात्मा को छोड़ देने पर नौकरों की तरह पेट भरने की हैसियत (=सामर्थ्य) का हो जायेगा।

२–६–४० प्रातः ४ बजे सोमवार
१८ भाद्रपद अमावस्या व्रत सं० १६६७ वि०

स्वप्न चेतावनी

"अन्दर गिरे तो पतन बाहर गिरे तो नाश"–भजन में ऊंघ आ गई और स्वप्न में क्या देखा, कि मैं एक ऊंट पर कचावा के एक तरफ सवार हूं। दूसरी तरफ पता नहीं कौन है। मेरा अक्खा भरा हुआ है। उसके ऊपर ऊंचा चढ़ा बैठा हूं। मेरा मुंह ऊंट के पलान की तरफ नहीं बल्कि कचावा के बाहर की तरफ है। ऊंट वाले ने दूसरे अक्खे वाले को कहा कि संभल कर बैठो, हाथ से मजबूत पकड़ लो, उतराई चढ़ाई है। मैं भी अपने आप संभला और मेरे हाथ कचावा को पकड़े हुये थे। मुझे ऊंघ (=स्वप्न में भी) आ रही थी। मैं कोशिश करने लगा कि हाथ छोड़कर मुंह का रुख बदलूं नहीं तो ऊंघ में मेरा सिर यदि नीचे झटका या झुका तो मैं उतराई चढ़ाई में नीचे गिर पड़ूंगा क्योंकि मेरा मुंह बाहर की ओर है। यदि मेरा मुंह ऊंट के पलान की तरफ हो जावे और बाहर को पीठ हो जावे तब यदि ऊंघ भी आने लगे तो मेरा सिर झुकने पर कचावा के भीतर ही पलान की तरफ हो जावेगा। गिरूंगा तो नहीं। बहुत कोशिश की मगर मेरा

हाथ कचावा से न छूट सका। आंख खुल गई। मैं हैरान रहा, विचार किया तो यह समझा–

यह चेतावनी मालूम होती है और बड़े काम की चेतावनी है। भीतर की ओर तो अहंकार और मोह से गिरना है। बाहर का गिरना काम और लोभ का। यदि इस अध्यात्मिक मार्ग पर चढ़कर तमोवृत्ति से सिर (बुद्धि) काम या लोभ की ओर झुक गई तो बस नाश हो जाना है। यदि अहंकार या मोह में बुद्धि झुकी तो यह भी गिरावट तो है परन्तु भीतर ही रखेगी, नाश नहीं करेगी।

परमात्मन् देव ! कृपा करो। यह चेतावनी दी है तो आशीर्वाद भी दो, मैं तो तेरा ही आश्रित हूं। हे प्रभु ! अपने आश्रित की लाज आप ही रखने वाले हैं, मैं स्वयं तो बिल्कुल असमर्थ हूं।

स्वार्थी और हितैषी सम्बन्धी

२. मर्यादा को वह पाल सकता है जो सम्बन्ध धर्म को जानता है। जो सम्बन्ध धर्म से बेपरवाह है वह कई बार मर्यादा रहित हो जायेगा और नेकी तथा प्रतिष्ठा को खो बैठेगा। दिलों में उसका स्थान घटिया दृष्टि का हो जावेगा। वही स्वामी अपने सेवक, नौकर के

हृदय को विजय कर सकता है, जो नौकर के शोक या प्रसन्नता में स्वयं सब प्रबन्ध, काम, सेवा, नौकर की ओर से करने वाला बन जावे और नौकर को बतावे नहीं। अपितु अपनी जेब से भी खर्च करना पड़े, तो कुर्बानी कर दे। नौकर उसके व्यवहार को देखकर ही प्यारा और कृतज्ञ हो जावेगा। जो स्वामी अपने सेवकों और नौकरों से ऐसे अवसरों पर पराये जैसा व्यवहार करते हैं, वे लापरवाह, अभिमानी और प्रतिष्ठा न करने वाले समझे जाते हैं। नौकरों के हृदय पर उनको अधिकार नहीं हो सकता। मनुष्य स्वार्थी बनने के स्थान पर हित पहचानने वाला बने।

(३) मर्यादा पालन करने वाले को प्रभु की एक विशेष दात प्राप्त होती है—वह है नम्रता। सात्विक भाव से मर्यादा पालन करने वाले को नम्रता की दात स्थायी रूप में मिल जाती है। रजोगुणी भाव से मर्यादा पालन करने वाले को नम्रता मिलती तो है मगर केवल उसी काल के लिए या अवसर पर या अवसर के अनुकूल तमोगुणी भाव वाले को भी नम्रता मिलती है, मगर जबानी जबानी।

सतोगुणी लोग मर्यादा का पालन करना अपना कर्त्तव्य जानते हैं, निष्काम भाव से करते हैं। रजोगुणी अपने यश: बड़ाई के लिए मर्यादा पालन करते हैं।

तमोगुणी बंधे बंधाए लाचारी से करते हैं कि निन्दा न हो और अपने समय पर भी उन्हें कष्ट न हो, सौदागिरी भाव से।

दान सामर्थ्य के अनुसार

४. जो निर्धन गरीब आदमी होकर श्रद्धालु होता है और धर्म में श्रद्धा और अधिक प्रेम रखता है, उससे अर्थ के उत्पन्न करने कमाई करने में रुचि कम होती जाती है। वह कभी खुशहाली से अपना या अपने परिवार का पेट नहीं पाल सकता। साधु संतों की सेवा, दर्शन और सत्संगों में अधिक हाजरी देता है। कार्य व्यवहार को वह ईश्वर भरोसे पर छोड़ कर बैठ जाता है कि यह धर्म के अवसर नित्य हाथ नहीं आते। इन शब्दों से अपना और लोगों का सन्तोष कर देता है, मगर यह भूल है। गरीब निर्धन श्रद्धालु में इस बात को समझने की बड़ी अज्ञानता है। ऐसा श्रद्धालु बड़ी चाहना से साधु पण्डितों की सेवा अन्न से करना चाहता है और अपनी हैसियत से बढ़कर अमीरों की तरह खर्च करता है और ऋणी हो जाता है, यह भी उसकी भूल है। निर्धन श्रद्धालु को जिसे अर्थ की अधिक कमी है, उसे अतिथि सेवा, साधु विद्वान् की सेवा तन से मन से करनी चाहिए, धन अन्न से कभी नहीं करनी चाहिए। हां, जो भूखा यात्री या अतिथि

उसके घर पर संयोग से आ निकले तो उसे अन्न की सेवा करें, मगर वही अन्न जो उसके घर में है जैसा स्वयं और बाल बच्चों को खिलाता है। विशेषता इसमें उसी अन्न में श्रद्धा प्रेम और नम्रता की दाखिल करें। हैसियत से अधिक ऋण उठाकर सेवा करनी पाप है—अतिथि के लिए भी और सेवक के लिए भी।

ऐसे श्रद्धालुओं को अपने काम में अधिक ईमानदारी स्वामी के लिए और अपने बाल बच्चों के पेट के लिए, अपनी जीविका के लिए ध्यान देना चाहिए। अपनी इस ड्यूटी का समय धर्म कार्यों में नहीं लगाना चाहिए। अपने धर्म वृद्धि के लिए, आत्मिक उन्नति के लिए, साधु सन्तों विद्वानों की सेवा अपने फालतू समय में करते समय सत्संग वार्तालाप का आनन्द उठाना चाहिए। सिर्फ अपना नित्यकर्म अपने घर पर अपनी जीविका के काम से पहले कर लेना चाहिए और काम करते समय प्रभु नाम का स्वांस—स्वांस में चिन्तन करते रहना चाहिए, यदि साहस और रुचि हो।

ऋण बुरी वस्तु है

५. कभी भी अपने पेट की जीविका के लिए उधार नहीं उठाना चाहिए, चाहे भूखा रहना पड़े। थोड़े में

निर्वाह करना पड़े, भीख मांगनी पडे, उधार बिल्कुल नहीं उठाना चाहिए। अपने परिश्रम का ठेका भी अपने परिश्रम के काम से अधिक न लेना चाहिए, इस भरोसे पर कि मैं ईमानदार हूं शेष काम करके दे दूंगा। उधार और अगाऊ लेने वाले को अपने प्राणों पर खेलना पड़ता है। वह ईमानदारी कभी पूरी नहीं कर सकेंगे। यदि बीमार हो जावे तो न काम कर सके न रुपये वापस कर सके बल्कि अपनी बीमारी और खर्च रोटी के लिये भी और दुःख बढ़ जाता है। वह व्यक्ति बहुत सुखी रहता है जो अपनी कमाई से अधिक नहीं खाता, अपनी कमाई के समय को किसी और स्थान पर नहीं लगाता।

४–६–४० प्रातः ३ बजे बुधवार,
२० भाद्रपद द्वितीय शुक्लपक्ष वि० स० १६६७

स्वप्न में दृश्य अनुचित मनोविनोद

माता मनोविनोद में अपने बच्चे को सीखा रही है। बच्चा गोदी पर है। उसे कह रही है—(पास ही बच्चे की बहिन खडी है) इसे मार, इसे मार इसे मार—मार—बहन सरक कर अपना सिर बच्चे के हाथ के पास कर देती है। बच्चे को समझ नहीं मगर मां बच्चे का हाथ स्वयं पकड़

कर उसकी बहिन के सिर पर मारती है। अब बच्चे को बार–बार ऐसा कराती हैं, और उसे समझ आ जाती है। फिर कहती हैं (भाई भी उसके पास खड़ा है) इसे मार, झट बच्चा हाथ उठा कर भाई को मारने लग जाता है। कभी कहती है (बाप जो पास बैठा है) जा पिता जी को मार आ। बच्चा ऐसा करता है, सब प्रसन्न होते हैं और हंस–हंस निहाल हो रहे हैं। फिर पिता कहता है–मां को मार आ। खूब मनो विनोद हो रहा है, मगर इस गलत मनो विनोद का परिणाम बहुत भयानक निकलता है।

६–६–४० प्रातः २ बजे शुक्रवार

२२ भाद्रपद चौथ शुक्ल पक्ष सं० १९९७ वि०

बच्चे की बन्द मुट्ठी का रहस्य

बच्चा जब माता के गर्भ से बाहर आता है, तो दोनों मुट्ठियां उसकी बन्द होती है। और वह उवां उवां करता है, चिल्लाता है। यदि उसकी मुट्ठी कोई खोलने लगे तो भी उवां उवां से चिल्लाता है। वह मुट्ठी बन्द क्या आदेश देती है ? मुट्ठी को जीवित आदमी कब बन्द करता है ? जीवित मनुष्य तब बन्द करता है जब उसे कोई वस्तु प्राप्त हो जावे। या तब बन्द करता है जब शत्रु का मुकाबला करना पड़े और शत्रु के मुकाबले के लिए

आवश्यकता है बल की और हथियारों की। भौतिक शत्रुओं के लिए तो भौतिक हथियारों की आवश्यकता है। दैविक, आध्यात्मिक शत्रुओं के लिए दैवी हथियार की आवश्यकता है। बच्चा जब संसार में आता है तो उसे काम क्रोध लोभ मोह अहंकार से मुकाबला करना होता है। उसके लिए पवित्रता के हथियार की आवश्यकता है और पवित्रता बिना बल के स्थिर नहीं रह सकती। बच्चा पवित्रता की मूर्ति होता है और कोई विषय वासना नहीं होती। उसकी एक मुट्ठी में बल दूसरी में पवित्रता बन्द होती है। संसार के शत्रुओं पर मुकाबला करने के लिए परमात्मा ने उसे पहले प्राप्त करा दी। इसी लिए जब उसे कोई खोलना चाहता है तो वह उवां उवां अर्थात् ओ३म् को पुकारता है। उसकी सहायता मांगता है कि मुझसे ये चीजें खोस रहे हैं।

११–६–४० बुधवार प्रातः ८ बजे
२७ भाद्रपद नवमी शुक्ल पक्ष सं० १९९७ वि०

व्यवहारी व्यक्ति के लिए आवश्यक आदेश

बड़े कारोबारी व्यक्ति को तीन काम करने आवश्यक हैं प्रतिवर्ष—१. यश के लिए दान अन्न वस्त्र। २. स्वास्थ्य

के लिए सैर करना, ३. धन की रक्षा और कारोबार की उन्नति और आत्मिक शुद्धि के लिए बृहत् यज्ञ। ऐसा करने वाले व्यापारी को अवनति न होगी।

१२—६—४० बृहस्पतिवार दिन के ३ बजे
२८ भाद्रपद दशमी शुक्ल पक्ष सं० १६६७ वि०

पचे कैसे और बचे कैसे ?

बिना शक्ति के मेदा मुख से अधिक खाया हुआ पचा नहीं सकता और बिना अधिकार मुख से अधिक बोला हुआ अपमान से बचा नहीं जा सकता।

१४—६—४० प्रातः ५ बजे शनिवार
३० भाद्रपद त्रयोदशी शुक्ल पक्ष सं० १६६७ वि०

व्यवहार शुद्धि

व्यवहार मनुष्य किसलिए करता है ? अर्थ कमाने के लिए। अर्थ क्यों कमाया जाता है ? काम (=इच्छा) पूर्ति के लिए। यदि तो कामनाएं पवित्र होंगी तो अर्थ भी धर्म से कमाया जा सकेगा। धर्म से कमाया अर्थ और धर्म अर्थ से कामनाओं की तृप्ति से मोक्ष भी मिल जाता है।

यदि कामनायें अपवित्र हों तो अर्थ भी अधर्म पाप

से कमाना पड़ेगा। कभी धर्म से नहीं कमाया जा सकता। अधर्म से कमाया अर्थ अपवित्र कामनाओं की तृप्ति न करता हुआ बल्कि उसे और बढ़ाता हुआ—आवागमन के भयानक चक्र में डालता रहेगा। यहां धर्म क्या है और अधर्म क्या है ? सत्य और न्याय से कमाना तो धर्म है और स्वार्थ वृत्ति से कमाना अधर्म है। सत्य का सम्बन्ध व्यवहार में वाणी से है और न्याय का बुद्धि से। इनकी रक्षा और इन्हें बल कैसे प्राप्त हो ?

सत्य के लिए मन में सन्तोष और न्याय के लिए बुद्धि में ईश्वर विश्वास आवश्यक है। यही ही एक साधन है और व्यवहार में इससे अतिरिक्त और बिल्कुल नहीं। सत्य, सन्तोष, ईश्वर विश्वास व्यवहार में रखने वाला सदा उन्नति करता है। कभी अवनति को नहीं पाता।

१५—६—४० रविवार

३१ भाद्रपद चौदश शुक्ल पक्ष सं० १९९७ वि०

ब्रह्म पारायण महायज्ञ कुटिया के लिए व्रत पहचान और दर्शन

जीवात्मा में सब शक्तियां बीज रूप में मौजूद हैं। इसे आवश्यकता है विकास की जो केवल मनुष्य शरीर

ही कर सकता है। जैसे आम की गुठली या किसी बीज में लकड़ी, डाली, फूल, पत्ते और फल सब अदृष्ट रूप में होते हैं। जब वही बीज भूमि माता की शरण में जाता है तो सूर्य मित्र=उदान, वरूण=प्राण पर्जन्य (जल) की सहायता से विकास पाता है। ऐसे ही जीवात्मा (मनुष्य) प्रभु की शरण में ब्रह्म यज्ञ द्वारा जाकर देवयज्ञ, पितृ यज्ञ, बलि वैश्व–देवयज्ञ और अतिथि यज्ञ की सहायता से पूर्ण विकास को प्राप्त होता है।

२. मनुष्य का जीवात्मा सदा प्रभु से मिला हुआ है। इसे आवश्यकता दो चीजों की है–पहचान और दर्शन की। पहचान के लिए ज्ञान की और दर्शन के लिए भक्ति की आवश्यकता है। ज्ञान पहचान तो चाहिए प्रभु के विराट् स्वरूप की, प्रत्येक वस्तु में इसकी पहचान और दर्शन होंगे ज्योति के, जिसे 'ज्योतिरुत्तमम्' वेद ने कहा।

भक्ति के अन्दर आकर ज्योति का प्रकाश अन्तरात्मा में होता है।

१७–६–४० प्रातः ६–३० बजे बुधवार

३ आश्विन द्वितीया कृष्ण पक्ष सं० १६६७ वि०

शक्ति का ह्रास

बेकायदा (अर्थात् नियमपूर्वक आसन न लगाकर)

बैठने से मनुष्य की शक्तियों का ह्रास होता रहता है। शरीर के दो भागों में प्रकाश और तम है। एक भाग दूसरे की सहायता करता है। एक आराम लेता है,दूसरा काम करता है। अंगों के बिना नियम अदल–बदल करने में अंग जो काम कर रहा होता है, वह खराब हो जाता है। नवयुवक प्रायः अपने इस बल को ऐसे ही नष्ट करते हैं।

१६–६–४० प्रातः ५ बजे शुक्रवार
५ आश्विन चौथ कृष्ण पक्ष सं. १६६७ वि.

भाग्यहीन

संसार में दो प्रकार के भाग वाले होते हैं–एक बड़भागी, दूसरे मन्द भागी।

(क) स्त्री पति को प्राप्त करके यदि सेवा नहीं करती तो वह मन्द भागिनी है, अगला जन्म उसे रंडापा देखना पड़ेगा।

(ख) माता पिता पुत्र प्राप्त करके उन्हें सेवा भाव नहीं सिखाते–जीते जी दुःख उठायेंगे।

(ग) पुत्र माता पिता की छत्र–छाया रखते हुए यदि उनकी सेवा नहीं करता, आज्ञा पालन नहीं करता तो अनाथ और मन्दभागी बनेगा।

(घ) सत्संग में आकर यदि कोई अपना सुधार नहीं कर लेता, तो वह सबसे बड़ा मन्द भागी है।

२३–६–४० प्रातः १०–१५ सोमवार
८ आश्विन सप्तमी कृष्ण पक्ष सं. १९९७ वि.

सन्मान और प्रेम

(क) पुत्र अपने पिता जी के लिए, जैसा उनका खिताब है, 'रायसाहब', 'भक्त जी' या 'चौधरी साहब' यदि इस नाम से चर्चा करता है, तो सम्मान तो अवश्य इसमें पाया जाता है, परन्तु प्रेम नहीं। पुत्र जब भी चर्चा करे, कि पिता जी ऐसा कहते है या पिताजी को, पिताजी से, इत्यादि प्रकार सम्बोधित करे तो इसमें सम्मान भी है और प्रेम भी।

(ख) स्त्री यदि अपने पति के लिए 'राय साहब' 'बाबू जी' आदि शब्दों से चर्चा करती है, तो सम्मान अवश्य है, प्रेम नहीं। प्रेम और सम्मान के लिए एक ही शब्द वह कहकर चर्चा करे कि 'आप' आवेंगे, 'आप' आ रहे हैं, 'आपकी' ऐसी आज्ञा है। ऐसे ही शिष्य अपने गुरू के लिए जो भी कोई अच्छे से अच्छा शब्द प्रयोग करता है, तो वह भी सम्मान अवश्य है, मगर प्रेम नहीं। प्रेम के लिए सम्बन्धित शब्द 'गुरू जी' प्यारा बनता है।

२. ब्रह्मचर्य का साधन भोजन सादा सात्विक है और बिना नमक के सब्जी खाना। आवश्यकता के लिए नमक पीछे पानी में पी लेना या चाट लेना। यह साधन स्वप्न दोष से भी रक्षा करता है। यदि ऐसा न कर सकें तो सब्जी नमकीन को पहले खा लेना और रोटी को पीछे रूखा, खूब चबाचबा कर खा लेना। यह दूसरा साधन। तीसरा साधन है, सब चीजों को, खट्टी मीठी नमकीन, मिलाकर खाना। चौथा साधन है——नमकीन सब्जी रोटी खाने के पीछे, रूखी रोटी खाना। मगर यह साधन निम्न कोटि का है।

२५—६—४० प्रातः ६—३० बजे बुधवार
१० आसौज नवमी कृष्ण पक्ष सं. १६६७ वि.

अपवित्रता बड़ा पाप है

संसार में सबसे बड़ा पाप अपवित्रता है। पवित्र को अपवित्र करना—पवित्र जल, पवित्र विचार, पवित्र आचार को अपवित्र करना। यह सब दुःख और अशान्ति, संग्राम, मन्द भाग्य सब अपवित्रता के कारण हैं।

अपवित्रता तब होती है, जब बुद्धि में विपरीतता आ जाती है। ब्राह्मणों की बुद्धि विपरीत हो जाने से

और धर्म का नाश हुआ। क्षत्रियों की बुद्धि फिर जाने से बल और शासन का नाश हुआ। वैश्यों की बुद्धि विपरीत होने से पाप की कमाई और व्यापार आजीविका न रे। शूद्रों की बुद्धि फिरने से सेवा धर्म और शिल्प विद्या मारी गई।

प्रत्येक मनुष्य को अपनी महानता की रक्षा के लिए पवित्रता का बहुत ध्यान रखना चाहिए। मातायें हमारी जाति की, अब इस विषय में बिलकुल लापरवाह हैं। जब वे समझदार हो जायेंगी. तब बुद्धि और पवित्रता ठीक रहेंगी।

दान हजार हाथों से

७ बजे सायम्

अथर्ववेद (३—२४—५) में कहा है—ओं शतहस्त समाहर सहस्र हस्त संकिर। सौ हाथों से क्रमा-हजार हाथों से दान कर—का क्या अर्थ है।

मनुष्य के दो हाथ हैं, मगर परमात्मन् देव आदेश दे रहे हैं कि मनुष्य ऐसे सु कर्म वाला हो जाए जो सौ हाथों से कमा सके। उदाहरण—साहूकार लोग, ठेकेदार, कारखानेदार, सैकड़ों हाथों से करते हैं। नौकर, चाकर,

मुन्शी आदि के द्वारा वे कमाते हैं। ये सौ हाथ हैं। बेचारे गरीब दो हाथों से ही कमाते हैं। दूकानदार, छाबड़ी से बेचने वाले, अपने ही हाथ से कमा सकते हैं। वे दान भी उतना ही करेंगे।

हजार हाथ से दान बड़े–बड़े साहूकार जो दूर–दूर तक सदाव्रत रखते हैं और अपने नौकरों चाकरों से भी, जिनके द्वारा वे कमाते हैं, उनसे दान कराते हैं। एक साहूकार कारखाने दार के पास दो सौ आदमी काम करता है, जब कोई दान लेने वाला आता है, तो खुद भी देता है और उनसे भी दान करा देता है।

२६–६–४० प्रातः ६–१५ गुरुवार
११ आसौज दशंमी कृष्णपक्ष सं. १६६७ वि.

पवित्र भाव

जितने भी जप तप व्रत और पूजा, नेक काम किए जाते हैं, वे सब भाव को पवित्र करने के लिए हैं, मगर भाव का सम्बन्ध चार बातों से है, जो इसे पुष्ट करती हैं जैसी वे होंगी वैसी भावनायें बनेंगी–भेष, भाषा भोजन और भजन।

अर्थात्–सतोगुंणी, रजोगुणी, तमोगुणी जिस प्रकार

की ये (=चार बातें) होंगी, वैसे ही भाव बनेंगे। इसलिए प्रत्येक नर नारी को इन्हें ठीक बनाना चाहिए कि भाव पवित्र होकर, किये हुये जप तप व्रत सफल हों।

६–३० प्रातः (सम्बन्धित २५–६–४० सात बजे सायम्)

अथर्ववेद–सौ हाथ से कमा, हजार हाथ से दान कर–शरीर में इसका उदाहरण है। मनुष्य जो भोजन करता है, पीता है, वह शरीर में एक ही रास्ते से जाता है, मगर उसका साधन एक सौ नाड़ियां हैं, जो कण्ठ में हैं। इससे नीचे जाती हैं, ये इसकी कमाई सहित हैं। मगर जब दान त्याग होता है– आंख, नाक, कान, मुख, रोम–रोम से हजारों स्थानों से जाती हैं।

२७–६–४० प्रातः ४–१५ शुक्रवार,
१२ आसौज एकादशी कृष्णपक्ष सं. १६६७ वि.

कमाई और दान

(२६–६–४० सात बजे से सम्बधिन्त) अथर्ववेद–सौ हाथ से कमा, हजार हाथ से दान कर)।

प्रभु की अपार कृपा हुई है कि ध्यान में यह बात प्रभु ने सुझाई है। हस्त का अर्थ है जरिया। परमात्मादेव, पुण्यात्मा मनुष्य को आदेश करते हैं और आशीर्वाद देते

हैं—ऐ मनुष्य ! तू दो हाथ वाला बनाया गया है, मगर तुझे एक ऐसा करण दिया गया है, जो बुद्धि कहलाता है। यह प्रभु की बड़ी दात है। इसके सहारे सौ हाथों से अर्थात् सौ जरियों से तू धन कमा और हजार तरीकों से दान कर। कैसे ?

एक बड़ा धनी है, उसकी आमदनी के सैंकड़ों साधन हैं। कारखाना (१) कपास (२) तेल (३) आटा (४) चावल (५) धान्य (६) मैदा (७) सूजी (८) दलिया (६) कपड़ा—दरी (१०) कालीन (११) खेश (१२) धोती (१३) सिल्क (१४) लुंगी (१५) गुलबदन (१६) छींट (१७) कारखाना लकड़ी (१८) लुहार (१६) तरखान (२०) भट्ठा (२१) कुम्हार (२२) ठेके वालों का काम (२३) इमारतों का बनाना बेचना (२४) भूमियां खरीदना (२५) दूकानें (२६) दूकानों का किराये पर देना (२७) ब्याज की आमदनी (२८) व्यापार (२६) जमींदारी (३०) कृषि कच्ची (३१) कृषि पक्की (३२) गन्ना ईंख (३३) नील (३४) गेहूँ (३५) मक्की (३६) मेवा (३७) बगीचे (३८) गुमास्तों की आमदनी बगैरा—बगैरा (३६) माल पशु क्रय—विक्रय (४०) मोटर (४१) लारी (४२) तांगे का किराया (४३) ऊंट बोझा ढोने की आमदनी (४४) दूध (४५) घी (४६) फर्नीचर किराया

पर चलाना आदि सैंकड़ों तरीके आमदनी के हैं और हजारों तरीकों से दान करना—जमीनं, चांदी, सोना, कपड़ा, अन्न—जल, विद्यालय, अनाथालय, गौशाला, विधवा आश्रमों, वजीफे, साधु, ब्राह्मण, लंगर, यज्ञ, सराय मुसाफिर खाना, धर्मशाला, सत्संग भवन, गरीब निर्धन रोगी, हस्पताल, व्यवसायहीन की सहायता हजारों स्थानों पर कर सकेंगे। यह है हजार हाथ से दान देना। हाथ का अर्थ है तरीका।

२. मनुष्य का यह शरीर मिट्टी का पुतला है, मगर प्रभु ने इसमें आत्मा डालकर इसे बहुत ही मूल्यवान बना दिया है। इसलिये इस शरीर से ज़ो क्रिया अपने आप होती है, वह सब मूल्यवान जाननी चाहिए। आध्यात्मिक व्यक्ति इसमें भी जीवन पाता है।

२८—६—४० प्रातः ६—३० शनिवार
१३ आसौज द्वादशी कृष्णपक्ष सं. १९९७ वि.

जाप भावना सहित

गायत्री मंत्र को उच्चारण करने में पाद—पाद को समझ के साथ अलग—अलग बोलते हुए ऐसे भावना धारण करने में मन की वृत्ति एकाग्र हो जाती है। दूसरा, यह जप अर्थ और भावना सहित पूर्ण हो जाता है। इसका

मन और बुद्धि पर अच्छा प्रभाव भी पड़ता है।

'भूर्भुवःस्वः' महाव्याहृति हैं। इनका सम्बन्ध हृदय के साथ है। इसके बोलने पर ये शब्द प्राण के द्वारा हृदय में दृष्टि—वृत्ति—करके टिकाने चाहिएं।

'तत्सवितुर्वरेण्यं' कहते हुए शिर बुद्धि को सविता देव के सामने करना चाहिए, जो (सविता) बह्मांड और बुद्धि का देवता है, वरने के लिए। जब कोई वस्तु वरी चुनी जाती है या पूजनीय को अपनाया जाता है, तो बुद्धि से निश्चय करके शिर झुकाया जाता है। इसलिए 'वरेण्यं' कहते ही प्राण द्वारा इन शब्दों को मस्तिष्क में टिकाना चाहिए।

जैसे स्त्री अपने पति को वर लेने पर उसकी निज सम्पत्ति और बाह्य सम्पत्ति की उत्तराधिकारी हों जाती है, एसे ही भक्त उपासक भी प्रभु की निज और गौण सम्पत्ति, सबका मालिक हो जाता है। पुत्र तो पिता की बाह्य सम्पत्ति के मालिक होते हैं। स्त्री पति की निज सम्पत्ति आनन्द और शरीर को स्थिर रखने वाली सातवीं धातु जो सब भोजन और धातुओं का सत् है, (वीर्य).उस सत् को प्राप्त करने वाली होती है। इस (=स्त्री) के अतिरिक्त और कोई भी इस शरीर के सत् को प्राप्त नहीं

कर सकता, चाहे शरीर की कमाई हुई समस्त सम्पत्ति भी ले सकते हैं। ऐसे ही प्रभु की निज सम्पत्ति निज शक्ति और बाह्य सम्पत्ति शक्ति का नाम भर्गः है। भर्गः ही शक्ति है जो प्रकाशमान है सत् है, तेज है, जो पाप को दग्ध करने वाला है। भय से रहित कर देने वाला है। तब ऐसी मूल्यवान वस्तु को कहां पर रखा जावे ?

'धीमहिं—धारण किया जावे। साधारण चीजें तो बाहर भी रखी रहती हैं, मगर मोती जवाहर सोना चांदी आदि सब तो तिजोरी में सुरक्षित रखे जाते हैं। तो प्रभु की ऐसी मूल्यवान सम्पत्ति भर्गः को भी शरीर के ऐसे भाग में रखना चाहिए जो बहुत ही सुरक्षित और मूल्यवान हो। वह है हृदय। इसी दिल में ही प्रभु ने अपना गुप्त खजाना वेद ज्ञान छुपाकर रखा हुआ है। जैसा कि यजुर्वेद अध्याय ३४ मन्त्र ५ में कहा है—ओं 'यस्मिन्नृचः सामयजूँषि' इत्यादि।

'भर्गोदेवस्य धीमहि' कहते हुये हृदय की ओर दृष्टि (=वृत्ति) करके प्राण द्वारा वृत्ति को टिकाना चाहिए, घुसाना चाहिए और फिर जब 'धियो यो नः प्रचोदयात्' कहे तो बुद्धि को सिर को प्रभु अर्पण कर दे समर्पित करदे कि प्रभु इसके मालिक हैं। इसे सन्मार्ग पर पथ प्रदर्शन करते रहें।

इस प्रकार से किए जप यज्ञों में उच्चारण समय आहुति देते हुए ध्यान रखा जावे तो मन बहुत टिकता और आत्मा रीझती है। अभ्यास करने पर बहुत आनन्द और मस्ती आने लगेगी।

२६–६–४० प्रातः ५–३० रविवार,

१४ आसौज त्रयोदशी कृ. सं. १६६७ वि.

कुपात्र को दान का फल

आहुति देते समय अग्नि की ज्वाला, प्रकाश का ध्यान रखना चाहिए। जो आहुति अग्नि पर पड़ जाती है, उसकी भेंट स्वीकार समान है, तुरन्त जग उठती है। जो आहुति राख पर पड़ जाती है, वह व्यर्थ हो जाती है, और जो अंगारों पर पड़ती है वह धुंआ निकालती है, लोगों को कष्ट होता है।

यही दशा दान वालों की है। जो तो सत्पात्र में लग जाता है वह तो परोपकार करके लाभ पहुँचाता और सुगन्ध, यज्ञ फैलाता है। जिसका दान कुपात्र अर्थात् राख में पड़ गया वह निष्प्राण हो गया और जो अंगारों की तरह असली सत्पात्र तो नहीं मगर नकली से बने हुए हैं, उनको दान देकर धूंवा निकालने वाले, लोगों को दुःखकारी हो जायेंगे।

३०—६—४० सोमवार ६—१५ प्रातः
१५ आसौज चौदस कृष्ण पक्ष सं. १६६७ वि.

पांच आहुतियों के पांच फल

ओं अत्यन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्ववर्धस्व चेद्धवर्धय चास्मान् प्रजया इत्यादिं।

मन्त्र से पांच आहुतियों के बाद जब चारों ओर जल देने की क्रिया होती है, उसका अर्थ यह भी है कि जब मनुष्य को पाच वस्तुयें—स्वास्थ्य, प्रजा, पशु, ब्रह्मवर्चस और अन्न आदि मिल जावें, तो फिर उसे शान्ति आ जानी चाहिए और सर्व संसार के साथ 'इदमग्नये इदन्नमम' के अपने वचनानुसार चारों ओर पानी—नाली में डाला जाता हैः जो शान्ति और संसार के परोपकार का अद्वितीय चिन्ह है।

१—१०—४० प्रातः ५ बजे मंगलवार
१६ आसौज अमावस्या सं. १६६७ वि.

भजन में नींद आने का कारण

(१) भजन में जब प्रातः निद्रा आवे, तो मन से चाहते हुए भी आंखों पर पानी के छींटे देते रहते हुए भी,

कई प्रकार के तजवीज के यत्न करते हुए भी निद्रा देवी भजन होने ही न दे तो क्या समझा जावे ?

(२) पेट में खुराक रहने के कारण (ख) यदि पेट भी साफ हो गया हो, तो रात की खाई खुराक का दोष या भोजन मदावर (=नशे वाला) हो, या बनाने वाले के विचार अच्छे न हों, उन्मत्त विचारों में पकती बनती रही हो। (ग) यदि ऐसा भी न हो तो फिर सूक्ष्म कारण होता है– प्रभु तो ऐसी कृपा करें, स्वयं ही अपनी प्रेरणा से समय पर ब्रह्म मुहूर्त में जगा दें, शौच स्नान की हिम्मत उत्साह दे देवें फिर अपने पवित्र चरणों का वास भी प्रदान कर देवें और फिर हृदय चाहते हुए भी दिव्य प्रसाद जो प्रभु उस समय देते रहते हैं और निद्रा देवी के कारण मनुष्य वंचित रहे तो यह मन्द भाग्य किसी योगी तपस्वी महात्मा बुजुर्ग से बेपरवाही किये जाने या उनका तिरस्कार करने के कारण होता है। इस जैसा मन्द भाग्य और कौन हो सकता है कि प्रभु दें और साधक उसे ले न सके।

(२) निद्रा सबसे बड़ी बाधक है। विषय विकार के विचार और मन की चंचलता से भी अधिक खतरनाक है। क्योंकि चंचल मन जब भजन समय दूर–दूर निकल जावे

या विषय विकार के विचार बार–बार लायेगा मगर वाणी और हाथ तो साधक के अधिकार में रह कर इनकी हाजिरी से तो कुछ न कुछ कर ही लेगा, मगर जब निद्रा देवी आ जावे तो हाथ से माला गिर पड़ेगी, वाणी पर होंठ ताला लगा देंगे। आंखों की पलकें द्वार बन्द कर देंगी। इसलिए निद्रा देवी का बहुत विचार रखना चाहिए।

(३) साधक ने यदि मन्त्र की सिद्धि प्राप्त करनी है, तो उसे बहुत तप–कष्ट उठाना पड़ेगा, तप और त्याग करना पड़ेगा। ऐसे साधक स्वयं ही डेढ़ बजे रात से जाग कर अपना काम प्रारम्भ करते हैं और भक्त की नींद तीन बजे प्रातः अवश्य खुलती हैं। जिन्होंने साधना को सिद्ध नहीं करना उनकी नींद कभी ब्रह्म मुहूर्त में नहीं खुलती। ब्रह्म मुहूर्त में जागकर भजन करने वाला, अपने जीवन को बनाता रहता है मगर सिद्धि को नहीं प्राप्त करता।

(४) गायत्री मन्त्र को मिलकर जब बोलना हो तो प्रेम से श्रद्धा से बोलने से लाभ होता है। नाभि से बोलने वाले, आवाज निकालने वाले की आयु और स्वास्थ्य बढ़ता है। आयु तो प्राण कम खर्च होने से, और स्वास्थ्य पेट पर बल पड़ने से आता है। जोर से नाभि से आवाज

निकालने, जप करने से रेचक खूब होता है। नाभि रेचक से सिकुड़ती और रोग दूर होते हैं। पेट की मन्द अग्नि, बदहजमी, अपच, भूख की कमी, सब दूर हो जाती हैं जोर से मन्त्र बोलने में श्वास कम लिए जाते हैं इसलिए अथर्ववेद में माहात्म्य (१६–७१–१) कि गायत्री आयु और प्राण को देने वाली है, इस प्रकार मिल जाते हैं।

४–१०–४० प्रातः १०–१५ शुक्रवार
१६ आसौज तृतीया शुक्ल पक्ष सं. १६६७ वि.

अग्नि समभाव रखती है

पृथ्वी जल अग्नि देवता हैं, परोपकारक गुणों, सात्विक गुणों के कारण। वैसे अपनी जड़ हैसियत से पृथ्वी तम, जल रज, अग्नि सत्व है। पृथ्वी में जो वस्तु पड़ जावे उसे या तो पृथ्वी खा जाती है, या यदि बढ़ाती है, तो अपने कुटुम्ब में बांटती है (प्राणी मात्र उसका कुटुम्ब है)। जल में भी जो वस्तु पड़ जाती है, वह भी अपने परिवार–जलचर जीवों को दे देता है। परन्तु अग्नि सब चीजों को संसार के लिए अपने गुरु पवन देव के अर्पण कर देती है, जो समभाव रखता हुआ सब प्राणी मात्र को, जितनी वे चाहें भरपूर कर देती है।

६–१०–४० प्रातः रविवार

२१ आसोज पंचमी शुक्ला सं. १६६७ वि०

तीन ऋण

मनुष्य का बच्चा जब उत्पन्न होता है, तो जन्मते ही, जो ऋण, सबसे बड़ा, उस पर होता है, उसे उतारने से ही मुक्त हो सकता है।

(क) कुंभी नरक से उसे दाई निकालती है। जैसे उसे कुंभी नरक से निकाला जाता है, उसका कर्तव्य है वह दुःखी लोगों को नरक से बचावे, निकाले। (ख) दाई उसको संसार में जीवित रहने के लिए श्वांश लेनेके लिए परदा फाड़ती है। (ग) गन्दगी अपवित्र खुराक से साफ करके, पवित्र खुराक लेने के लिए दाई नाड़ा काटती है। ऐसे ही दूसरों को संसार में स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने के लिए, दासता का परदा फाड़े और आवागमन के अपवित्र चक्र से निकालने के लिए अविद्या का नाड़ा काटे। ये तीन ऋण हैं, जो इनको उतारता है, उसका नाम, जन्म दिन लोग मनाते हैं।

७–१०–४० प्रातः ४–५० सोमवार
२२ आसौज षष्ठी शुक्ला सं० १६६७ वि०

तीन प्रकार की घड़ियों से शिक्षा

तीन प्रकार की घड़ियां होती हैं। एक तो ठीक करने पर, बार–बार समय ठीक कर देने पर भी, धीमे थोड़ी–थोड़ी पीछे हो जाती है और वे ७–८ सैकण्ड आधा मिन्ट पीछे होती रहती है। दूसरी तीव्र चाल, ठीक करने पर बार–बार सही करने पर भी, आगे बढ़ जाती है। प्रतिदिन कई सैकण्ड बढ़ जाती है। तीसरी वह है, जो समान एक सा सही समय निश्चित समय देती है। जब पूछो सही समय देती है।

ऐसे ही मनुष्यों में, जिनका आचरण ठीक बनाया जाता है, तो कुछ समय पीछे धीरे–धीरे अज्ञात तरीके से थोड़े–थोड़े दोष उनमें प्रारम्भ हो जाते हैं। यह घड़ी के मनुष्य तमोगुणी होते हैं। इनका कदम बार–बार ठीक कर लेने पर भी पीछे को ही फिसलता है और जो तेज हो जाते है वे रजोगुणी हैं, बार–बार ठीक करने पर भी जल्द बाजों की तरह, सीमा से बाहर हो जाते हैं। सतो-रस, ठीक कर देने पर ठीक चलने वाली घड़ी या मनुष्य

सात्विक होते हैं। कभी–कभी बहुत तेज हो जाने वाली घड़ियों को घड़ी साज बहुत पीछे ही सुई कर देता है, कि कुछ दिनों में गति ऐसी चल कर बराबर हो जावेगी। मगर बराबर करने पर भी तेज हो जाती है।

साधकों को, घड़ी के इस तम रज सत् स्वभाव से बड़ी शिक्षा लेनी चाहिए।

अहंकार जीव का अपना हथियार

(२) काम क्रोध लोभ मोह अहंकार में से जीव की अपनी वस्तु शुद्ध अपना हथियार अहंकार है। काम मन का हथि-ार है। क्रोध बुद्धि का, लोभ चित्त का, मोह अहंकार का। ये चतुष् अन्तःकरण हैं। शुद्ध अहंकार जीवात्मा की अपनी हस्ती है, जो इस अहंकार को सुरक्षा स्वत्वाभिमान अर्थात् आत्मिक उन्नति के लिए हथियार बनाता है, वह तर जाता है। जो अहंकार भाव से अहंकार का हथियार चलाता है। वह मनुष्यत्व से भी गिर जाता है।

(३) परमात्मा ने जब संसार को उत्पन्न किया तो बिल्कुल शान्ति थी। पशु अपनी पाशविक आदत से संसार में अशान्ति नहीं फैलाता था। मगर मनुष्य जब भी अपने भीतर पाशविक आवेश का गुण उत्पन्न करता है, प्रयोग करता है तब से अशान्ति प्रकट हो जाती है।

प्रभुदात

(४) सामर्थ्यवान माता पिता से पुत्र जो भी ची
मांगता है उसे मिल जाती है तुरन्त मिल जाती है। मनु
गायत्री मन्त्र में बुद्धि का सन्मार्ग परमात्मा से मांगता है
जब भी मन्त्र उच्चारण करता है परमात्मन् देव उसे
बुद्धि प्रदान कर देते हैं। मगर मनुष्य टिकाता स्वयं न
जैसे पानी में खड़े हुए मनुष्य को प्यास लगे और वह
पानी से भरे, तालाब तो तुरन्त ही उसके मुख को
देगा मगर बुक के संगठित न होने, अपनी बिखरी उंगलि
के कारण, तुरन्त ही पानी बह जाएगा और वह बार-
ऐसा करने पर भी पानी से प्यास न बुझा सकेगा, न
सकेगा। वह पानी व्यर्थ नहीं जाता गिरकर उसी श्रोत
वापिस चला जाता है। जैसे कोई भिखारी किसी दानी
अनाज मांगे और दानी उसे अनाज के ढेर पे ले
और उसे भरकर उसके कपड़े में डाल देवे। मगर
वाला कपड़े के सिरों को लापरवाही के कारण, वंश
कर सके तो सब दानें उसी ढेर में गिरकर मिल जा

इसी प्रकार जब मन्त्र गायत्री उच्चारण होता है
परमात्मन् देव तुरन्त ही 'धियो यो नः प्रचोदयात्

बुद्धि प्रदान करते हैं। मगर जपने वाला, मांगने

स्थान पर उपस्थित नहीं है तो वह ज्ञान प्रभु का वापिस उसी श्रोत में मिल जाता है। मांगने वाले के पल्ले कुछ नहीं पड़ता।

'भर्गो देवस्य धीमहि' मांगने पर 'भर्गः' तो प्रभु देते मगर मन में छिद्र होने से सारे का सारा गिर जाता है। इसलिए साधक जप करने वाला बड़ी सावधानी से मांगे और बर्तन को दृढ़ता से सामने रखे तो तुरन्त ही उसमें मांगी हुई चीज पड़ जावेगी।

सच्ची माता की दात

(५) माता अपने पुत्र को ३ (तीन) दात प्रदान करती है—गोदी का विश्राम, स्तन का अमृत दूध और हाथ से आशीर्वाद। वही बच्चा इन अन्तिम दो दातों का अधिकारी बनता है जो गोदी में बैठ जावे। नहीं तो फासला पर रहने वाला बच्चा तो किसी भी दात को नहीं प्राप्त कर सकता।

इस गायत्री में माता की गोदी है—१ 'तत्सवितुर्वरेण्यम्', २. स्तन अमृत दूध 'भर्गो देवस्य धीमहि', ३. सिर पर हाथ फेरने का आशीर्वाद 'धियो यो नः प्रचोदयात्'। उपासक माता का पुत्र, सच्चा पुत्र बन जाए तो सहल (आसानी) से यह दात प्राप्त हो सकती है।

८—१०—४० प्रातः ४—४० मंगलवार
२३ आसौज अष्टमी शु. सं. १६६७ वि.
(संबंधित ७—१०—४० सं. २)

अहंकार तीन प्रकार का होता है-

सात्विक, राजसिक, तामसिक अहंकार होता क्यों है

कइयों से, जो अपने समीप रहते हैं उनसे, कि बात में बड़ा होने के भान से अभिमान होता है—धन बल में, विद्या में, अक्ल इत्यादि में !

तामसिक अहंकार वह होता है कि हो तो विशेष किसी बात की न अर्थात् न धन हो, न विद्या हो, न ब हो, न आचार हो, विचार ऊंचे न हों, न व्यवहार हो और व्यर्थ में अपने आप को बड़ा मान लेना। या किसी बड़े संग में रहने से उसकी बड़प्पन को अपना बड़प्पन जान अभिमान करना।

राजसिक अभिमान वह होता है कि नाशवान् पद के प्राप्त होने से, जिनका कोई विश्वास नहीं, कि क्षण में मेरे हैं, और दूसरे में मेरे नहीं रहेंगे, उस अभिमान करना। सात्विक अहंकार आत्म अभिमान है आत्मा सत् है, उसकी सदा रक्षा करने का भाव रख सात्विक अहकार है।

२. जो दूसरों का पहरा देते, रक्षा करते हैं, वे चौकीदार होते हैं, और जो अपनी रक्षा करते हैं, वे मालिक मनुष्य हैं।

३. मैं सदाचार को क्यों अपनाऊं ? इसलिए कि मैं सत् हूं। (आत्मा सत् है) सत् ही उसका आचरण है। यही उसको अहंकार करना चाहिए कि मैं सत् से क्यों पतित होऊं। आत्मा सत् से पतित नहीं हो सकती, चाहे संसार उलट जाए। यह आत्म–अहंकार है।

६–१०–४० प्रातः ४–४० बुधवार,
२४ आसौज नवमी शुक्ल सं. १६६७ वि.

व्रत का फल

व्रत किसको करना चाहिए ? और इसका क्या फल है, क्या चिन्ह है ?

व्रत करने वाले की तीव्र इच्छा होनी चाहिए कि वह अपनी वर्तमान अवस्था से उन्नत होवे। प्रकृति की ओर से जो सब वस्तुयें उत्पन्न हुई हैं, बढ़ रही हैं। निर्जीव पर्वत भी बढ़ता है, मगर मनुष्य की इच्छा बढने की, शरीर के अतिरिक्त, आत्मिक उन्नति की है। अर्थ, बल, विद्या, अक्ल, परिवार, धन, आदि में भी बढ़ना चाहता है, मगर

व्रत तो आत्मिक उन्नति के लिए किया जाता है। व्रत करने वाले को फल रूप में प्रकाश पवित्रता और शीतलता प्राप्त होती है। परन्तु तभी, यदि वह दृढ़ निश्चय से व्रत करे और दृढ़ता तभी हो सकती है, जब कि उसमें समानता हो। इन गुणों से वह सफल होता है।

जब जिस व्रति को फल रूप में कोई भी चीज प्राप्त नहीं होती, वह समझे कि उसका व्रत पूरा नहीं हुआ। जितना–जितना जिस किसी को पवित्रता, प्रकाश या शीतलता मिल जाती है, उतना–उतना व्रत सफल समझा जाता है।

१०–१० ४० प्रातः ५ बजे वीरवार
२५ आसौज विजय दशमी सं. १६६७ वि.

विजय दशमी

विजय दशमी का नाम विजय दशमी क्यों पड़ा? जब कि भगवान राम ने लंका विजय भी चैत्र मास की अमावस्या या पूर्णमासी पर की।

भगवान राम ने चौदह वर्ष पर्यन्त अपने पिता की आज्ञा पालन में व्रत रूप से अपनी दसों इन्द्रियों पर कमाल का क़ाबू और ज़ब्त (वश और संयम–शासन

रखा। शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, काम, क्रोध, लोभ मोह, अहंकार इन दसों पर विजय पाई। पंडित और राजा रावण जो दस सिर (दस प्रकार के ज्ञान और विद्या) रखता था, विषयों और इन्द्रियों का दास था। उसे हराया, उसका नाश किया इसलिए विजय दशमी मनाकर प्रसिद्ध हुई।

२. भगवान राम चैत्र की शुक्ल पक्ष शुक्ला नवमी को उत्पन्न हुए और आश्विन मास में शुक्ला दसमी पर विजय दसमी होती हैं। वसन्त ऋतु जो सब ऋतुओं का आरंभ है और जीवों आदि की सृष्टि में शरीर है। नौ का अंक जैसे गणित विद्या में अंतिम अंक है या नौ पर अंक पूरे हो जाते हैं ऐसे ही जीव के शरीर में नौ सुराख (छेद) हैं। इनको विजय करने वाला या एक प्रभु क़ी पूजा से जो इन्हें भरपूर कर देता है तो वह दस बन जाता है अर्थात् परमात्मा में रम जाता हैं उन्नत जीव आवागमन का मायावी शरीर नहीं लेता बल्कि प्रभु की अमृत गोद में रहकर ब्रह्ममय हो जाता हैं और ब्रह्म ही उसका शरीर कहलाता है।

(३) विजय दशमी के दिन रावण को तब मारा जाता है, जब सूर्य आधा बाहर आधा भीतर हो या रावण

को, जैसा कहते हैं कि वर मिला हुआ था कि उसे कोई किसी काल में नहीं मार सकेगा, न रात में न दिन में, तो भगवान राम ने तब मारा जब कि न पूरा दिन था, न पूरी रात अर्थात् सन्धि बेला। सन्ध्या के समय ही मारा जा सका।

इसका रहस्य यह है, कि रावण अहंकार है, अहंकार को नाश करने या वश में करने के लिए प्रभु भक्त सन्धि बेला में जबकि तम और प्रकाश मिल रहे हों, तब मार सकता है। उस समय आसानी से अहंकार नाश हो सकता है। प्रकृति के नियमानुसार ऐसे पवित्र समय में, मनुष्य के भीतर रहता ही नहीं। या जिस समय सुषुमता नाड़ी चलती है, उस समय में प्रत्येक मनुष्य, चाहे वह भक्त हो या पापी, अहंकार रहित और पूर्ण सात्विक अवस्था में होता है।

हमारे पूर्वजों ने दशहरा मनाने में सात्विक शिक्षा का आश्चर्यजनक प्रकटीकरण किया जो इस पथ के पथिक ही जान सकते हैं।

भजन अभ्यास का स्थान

(४) संध्या का क्यों जल के किनारें और खुली हवा में अभ्यास किया जाता है ?

उ०—जैसे हवा में लहरें उत्पन्न होती हैं और जल में उत्पन्न होती हैं, अग्नि में भी हवा के लगने से उत्पन्न होती हैं। ऐसे ही मनुष्य के मन चित्त बुद्धि तीनों में लहरें उत्पन्न होती हैं और तीनों की संकल्प विकल्प की। इसलिए बुद्धि का सम्बन्ध हवा से, मन का जल से, चित्त का अग्नि से है। इसलिए इन तीनों को शुद्ध और शान्त करने के लिए प्रभु पूजा, ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ में सन्ध्या जप प्राणायाम खुली हवा में और नदी, जल किनारें करना चाहिए, लिखा।

१२—१०—४० प्रातः ५ बजे शनिवार
२७ आसौज द्वादशी शुक्ला सं० १९९७ वि०

समय का प्रभाव

जप करने वाले साधकों को यह बड़ा ध्यान रखना चाहिए कि कौन—कौन से समय जप क्या लाभ देता है। हर एक चीज का देवता अलग—अलग होता है जैसे शरीर में आंख का देवता सूर्य, मन का चन्द्रमा आदि और नक्षत्रों के देवता, तिथियों के देवता, अलग—अलग हैं। देवता का अर्थ विषय या मजमून भी है और देवता का अर्थ प्रकाश और सुख सहायता वाले का भी होता है।

तिथियां समय से बनी हुई हैं इसलिए अलग–अलग समय के देवता भी अलग–अलग हैं। समय–समय का प्रभाव भी अलग–अलग होता है। अर्धरात्रि के पीछे एक बजे से तीन बजे तक श्रद्धा विधि सहित गायत्री जप करने वाले को सिद्धि प्राप्त होती है। तीन से पांच तक जप करने वाले को प्रभु में प्रीति लगन अति श्रद्धा उत्पन्न होती है। पांच से सात तक वाले को ज्ञा–नये–नंये विचारों की उत्पत्ति होती है। मुसलमानों या हिन्दुओं ने किसी भी मंत्र में सिद्धि प्राप्त की है, वह घोर तप से ही की हैं रात को जाग जाग कर की है–(कर्म उपासना ज्ञान)। सिद्धि भी एक शान्ति है, (अर्थात्) जो शुभ कर्म करने में प्रेरित करके सफलता देती है। (=वही सिद्धि है)।

१६–१०–४० प्रातः ३ बजे बुधवार १ कार्तिक आसौज शुक्ला दूसरी पूर्णमासी सं० १६६७ वि०

सर्व प्रथम कामना भूख

सबसे प्रथम इच्छा या कामना, जो मनुष्य के भीतर उत्पन्न हुई है वह क्या है ? और फिर किससे उत्पन्न हुई?

उत्तर—शरीर में पेट होने से इसमें भूख पैदा हुई जो प्राण को तृप्त और पुष्ट करने के लिए थी और उस भूख की निवृत्ति पेट की तृप्ति के लिए मन में इच्छा कामना उत्पन्न हुई। उस कामना ने मनुष्य के बुद्धि मस्तिष्क में, इसको हल करने का अपना मामला सामने रखा। बुद्धि ने जो धर्म (सत्य न्याय) का स्थान है, अर्थ पैदा करने की सलाह दी और हमारे शरीर ने बुद्धि की उस कामना (=सलाह) को पूरा करने के लिए पुरुषार्थ करके अर्थ प्राप्त किया।

अर्थ की कामना

(२) मनुष्य के मन में धन इज्जत, सौभाग्य महलमाड़ी आदि प्राप्त करने की इच्छा नहीं उत्पन्न हुई। केवल भूख तृप्ति के लिए कामना उत्पन्न हुई। यदि इतने तक ही रह जाती तो पाप करने की उसे आवश्यकता ही न रहती। धर्म, सत्य न्याय के बिगड़ जाने से अर्थ बिगड़ गया।

(३) बिगड़ी को सुधारने के लिए बुद्धि ज्ञान की आवश्यकता है। लोक और परलोक के सब प्रकारों के व्यवहारों के बाद की जरूरत है। हाथ, करतल, ऊपर है तो शरीर का काम होगा। कर ऊर्ध्व, कर पृष्ठे, हो गया

तो आत्मा के लिए बन गया। आंख सामने खुली है, तो संसार के, बाह्य, काम करेगी, अन्तर्मुख हो जावे तो प्रभु प्राप्ति होगी। कान बाहर है तो संसार का काम, जब भीतर चले गये तो परमात्मा के लिए हो गये। ऐसे ही मुख नासिका का हाल है।

१७--१०--४० मध्य रात्रि ६--३० वीरवार
२ कार्तिक कृष्ण पक्ष की एकम् सं. १६६७ वि.

काम आदि को वश में करने के उपाय

क्रोध को दबाने के लिए रसना का उलटना, और दांतों को मजबूती से एक दूसरे पर जोड़कर खूब दबाये रखना-- इसका अभ्यास करने से क्रोध कम हो जाता है। जप आदि भी यदि इस अभ्यास से किया जाता रहे तो क्रोध वृत्ति शान्त होने लगती है।

(२) आंख और जबान के उलटने में अभ्यास से सफलता मिल जाती है। नासिका को प्राणायाम करने से बन्द कर दिया जा सकता है। ये तीनों, काम क्रोध लोभ के स्थान है। इन विषयों की रोक, अभ्यास से, सरल बन जाती है मगर बहुत कठिन काम है अहंकार और मोह के रोकने का जिनका स्थान कान और मन है। कान को

रोकने के लिए बहुत ही गहरे अन्दर सुनने के अभ्यास की आवश्यकता है, अन्यथा अहंकार कभी नहीं आ सकता। मन का रुकना उलट देना तो बिना वास्तविक नम्र के नहीं हो सकता।

खुमार और नशा

३—मनुष्य को प्रभु बुद्धि की दात देता है, मगर क्यों नहीं (=मनुष्य) टिका सकता ? उसका कारण है मनुष्य के शरीर में बुखार और खुमार (नशा और मस्ती) चढ़ा रहता है। बुखार के बीमार के सिर पर डाक्टर बर्फ रखते हैं कि बुखार उतर जाए तो होश में आ जावे। खुमार (नशा) के उतारने के लिए तुर्सी (खटाई) खिलाते हैं, या कोई तेज दवाई सुंघाते हैं कि खुमार उतर जाए। बुखार क्या है ? लोभ व्यवहार कारोबार का और खुमार होता है। मोह परिवार का व्यवहार का बल न रहे तो बुखार नहीं रहता। परिवार का वियोग हो जावे तो खुमार हट जाता है। धन और जन के दिन जाने से मनुष्य को अक्ल ठिकाने आती है। फिर वह आश्रय ढूँढ़ता है और इसमें नम्रता से बरतने का ढंग आ जाता है।

वन्दना का लाभ

४–१५ प्रातः

बुजुर्गों (अर्थात् अपने बड़ों) को वन्दना करने में आशीर्वाद मिलता है। जो लोग अपने मस्तिष्क को किसी बुजुर्ग के चरणों में टेकते हैं, तो उन बुजुर्गों की प्रसन्नता होने से उनकी आशीर्वाद प्रसन्नता के साथ, उनके अपने मिजाज (अर्थात् मानसिक भावना) का प्रभाव, मस्तिष्क टेकने वाले के मस्तिष्क में कर जाता है। अर्थात् बिल्कुल बुजुर्ग के चरणों से सात्विक वृत्ति और राजसिक वृत्ति के बुजुर्ग के चरणों से राजसिक वृत्ति और तामसिक वृत्ति के बुजुर्ग से तामसिक वृत्ति की धारा अवश्य मस्तिष्क में असर करेगी। मिश्रित वृत्ति वाले से मिश्रित धारा आवेगी। इसलिए यदि कोई मनुष्य चाहता है कि जो उसे सहज में सात्विक वृत्ति प्राप्त होवे तो वह केवल सात्विक शुद्ध पवित्र ऊंची कोटि के महान् आत्मा को ही चरण वन्दना करे, अन्य को नहीं।

वीतराग पुरुष पूज्य महात्मा गांधी, पूज्य स्व० सर्वदानन्द जी आदि जैसी महान् पवित्र आत्माओं के चरण छूने से यह लाभ हो सकता है।

भर्गः का फल

७ बजे प्रातः

भक्त जो भगवान की भक्ति करता है, 'भर्गः' प्राप्ति के लिए। 'भर्ग' है वह ऐश्वर्य भगवान का जो सदा साथ रहने वाला, व नाश होने वाला और नाश करने वाले कार्यों से दूर रखने वाला 'भर्गः' कहलाता है। यही बुद्धि को सुमार्ग पर सदा लगाये रखता हैं सत्य असत्य, पाप–पुण्य प्रकृति और परमात्मा का भेद कराने वाला भी यही है।

नम्रता तीन प्रकार की

(२) जैंसे अहंकार तीन प्रकार का होता है, ऐसे नम्रता भी तीन प्रकार की होती है, राजसिक, तामसिक और सात्विक। तामसिक नम्रता वह होती है जो स्वार्थी मनुष्य लोभी लोभवश अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए बड़ा झुकता है बड़ा आदमी होता है तो झुक–झुक मिलता, मीठा बोलता, अपनी नम्रता दिखा कर दूसरे के हृदय में घर करता है। छोटा आदमी होता है तो अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए गिड़गिड़ाता, खुशामद करता, छोटे से छोटा काम भी करता और कभी रो रोकर अपनी नम्रता

दिखाता है। राजसिक नम्रता वह होती है, जो अहंकार से अपने यश बड़ाई और अपने दोषों को दबवाने के लिए बड़े नम्र भाव से सब से मेल करता है।

सात्विक नम्रता तो स्वभाव सिद्धि, अन्दर बाहर बिना किसी दिखावा बनावट के होती है और ऐसे को देख देख कर गद्गद् प्रसन्नता होती है।

१८—१०—४० प्रातः ४—१५ शुक्रवार
३ कार्तिक द्वितीया कृष्ण पक्ष सं. १९९७ वि.

प्रकाश कैसे मिलता है ?

प्रकाश, प्रभु से मांगने की वस्तु नहीं जो वह दे देगा और न रोने से वह देता है। प्रकाश तो सदा रगड़ से स्वयं निकला करता है। परमात्मा जो स्वयं प्रकाश स्वरूप है, तो वह अन्तःकरण में उदय होता है, प्रकट होता है।

मक्खन दूध में होता है घी प्रकट होता है रगड़ने से। इसी प्रकार बुद्धि मन की एकाग्रता में जो शब्द की रगड़ होती है, उससे मन के परदे फटते हैं, तहें फैलती हैं, तब प्रकाश निकलता है।

(२) मांगने वाली वस्तु (अर्थात् जो मांगी जाती है वह)

तो केवल, इस गायत्री मन्त्र में प्रभु से है घी, बुद्धि, पवित्र बुद्धि। प्रकाश या भर्गः तो धारण करने की चीज है।

प्रभु के दो रूप

(३) परमात्मा के दो रूप है—एक असली, दूसरा नकली। बहुरूपिया, विराट् स्वरूप प्रकृति में आया हुआ है। यह तमाम प्रकृति उसका बहुरूपिया स्वरूप है जिस पर लोग लट्टू हुये है। भक्त तो प्रभु का असली स्वरूप तलाश करके सन्तुष्ट होता है, बहुरूपिया में नहीं। जैसे नन्हा सा बच्चा अपनी मां को पहचानता है, दूसरी किसी स्त्री के पास नहीं जाता, चाहे वह हाथ फैला कर भी उसे लेना चाहे। अपनी माता घूंघट निकाल बैठे, जैसे स्त्रियां इक्ट्ठी चर्खा कातती हैं, और आजमायश के लिए जब किसी का बच्चा आता है तो वह तो घूंघट निकाल लेती है और दूसरी कोई देवी उठती है तो वह उसके पास नहीं जाता, चाहे वह हाथ फैला देती है।

सम्बन्ध चुन लो

प्रातः ७ बजे

साधक को प्रभु पूजा से तभी आनन्द और रस मिल सकता है और उसकी ठीक स्थिति तब बन सकती है जब

वह प्रभु से अपना कोई सम्बन्ध जोड़ लेवे।

ऐसे कहने को तो, प्रभु सब कुछ आप हो—माता हो, पिता हो, गुरू भी आप हो, बन्धु और सखा भी आप हो। परन्तु सब कुछ जिसे समझता है, वह गलत कहता है, समझता ऐसा नहीं। साधक को अपना सम्बन्ध, उस प्रभु से, पहले निश्चय कर लेना चाहिए। राजा को प्रजा अपना पिता—माता कहती है, मगर माता पिता जैसा बर्ताव राजा से नहीं करती। राजा जैसा ही भाव दिल में रखती है। गुरू भी पिता होता है, मगर दिल में भाव किसी पिता का नहीं बनाता, गुरू का सा सम्मान होता है, प्यार पिता जैसा नहीं।माता पिता भी गुरू है मगर इनके लिए दिल में पुत्र भाव से श्रद्धा रहती है, शिष्य गुरू भाव से नहीं। इसलिए प्रभु सब कुछ होते हुए भी विशेष रूप मान कर वही पूजा भक्ति व्यवहार करना चाहिए। नहीं तो कभी सिद्धि नहीं होगी।

प्रभु को माता मान लो या गुरू मान लो। गुरू मानने पर कभी नाज नखरे (=इतराना चोचला करना) नहीं कर सकते। राजा मानने पर सदा प्रजा की न्याईं रहोगे। सब नर नारी (प्रभु को) माता पिता के नाम से शीघ्र पुकारते हैं, मगर पति कहने का किसी का दिल ही

नहीं करता, जिसका दर्जा सबसे ऊंचा है। भक्त कभी अपने आप को पुत्र नहीं बनाता। वह अपना सब कुछ ही अर्पण करता है, स्त्री की न्यांई। और तब भर्गः का मालिक होता है। हर हाल में प्रभु की भक्ति के लिए कोई सम्बन्ध चुन लेना चाहिए (वर लेना चाहिए) तब उसी ही तरीके से, आसानी से जल्दी सिद्धि (अर्थात् सफलता) प्राप्त होगी।

प्रातः ६–४०

दृश्य

पानी के लिए, वाटर वर्क्स का तालाब या चश्मा जो बहुत दूर था, एक मील भर से, बड़ा परिश्रम करते–करते नाली खोदी गई, जो शहर की भूमि से नीचे सतह रखा गया। जब सिरा तालाब तक पहुंच गया तो तालाब से पानी उसमें नहीं आता–कारण कि वह नाली तालाब की सतह से ऊंची है। तालाब नीचा है। इतना प्रयत्न करने और इतना निरन्तर समय लगाने पर भी सिद्धि नहीं हुई। जल का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता।

इसी तरह लाखों का जप तप प्रभु भक्ति करते हुए वर्षों तक के बावजूद अभीष्ट कुछ प्राप्त नहीं कर सके। उन्होंने नम्रता का गुण धारण भी किया कि जल में जो

गुण नम्रता का है, नाली भी नीची सतह में रखी गई मगर वह अपने क्षेत्र में तो नीची हुई, परन्तु तालाब से नीची नहीं बनी।

यही हाल भक्त का हुआ कि अपने वायु मंडल में जाति आदि में तो सबसे नीचा होकर, नम्र होकर रहा, मगर प्रभु के मुकाबले में ऊंचा बना रहा, नीचा बना ही नहीं। तो उसे कैसे प्राप्ति होवे।

अर्थात् जितना अधिक वह नम्र लोगों में हुआ, तो उसका अभिमान नाम मात्र भी प्रकट नहीं हुआ। न उसने जाहिर किया। मगर दिल में यह अहंकार अभिमान बनाए रखा कि मैं बड़ा ही नम्र स्वभाव हूं। अपने इस गुण में अहंकार वृत्ति सूक्ष्म रूप से उसे अभिष्ट में सिद्ध होने से रोक (=रूकावट) बनी रही।

२२–१०–४० प्रातः ५ बजे मंगलवार,
७ कार्तिक कृष्ण पष्ठी सं. १६६७ वि.

अपने शब्दों को सुनो

गायत्री मन्त्र के उच्चारण वा जप में साधक अपने शब्दों को सुनने का अभ्यास करता रहता है। उसको एक

परमसिद्ध एक दिन यह हो जावेगा कि वह अपने अन्तरात्मा की आवाज को सुनने का अधिकारी बन जावेगा। अपने अन्तरात्मा की आवाज को सुनने वाला ही अपने आप का मार्गदर्शक होता है।

५–३० सायम्

बलपूर्वक उच्चारण का लाभ

गायत्री मन्त्र के उच्चारण में जो व्यक्ति शब्दों का ठीक–ठीक उच्चारण करता है और बलपूर्वक जिस–जिस शब्द का जो–जो स्थान बोलने का है, उस पर यदि उसकी चोट लगती है, तो जैसे व्यायाम में जिस–जिस अंग का व्यायाम किया जाता है, उससे बल आ जाता है। ऐसे ही इन शब्दों से उन स्थानों का बल आ बढ़ता है और ज्ञान तन्तु वहां–वहां के बलवान हो जाते हैं। ऐसे शब्द फिर अपने ऊपर भी प्रभाव करते हैं और सुनने वाले पर भी।

२४–१०–४० प्रातः ४–४५ वीरवार,

६ कार्तिक अष्टमी कृष्णपक्ष सं. १६६७ वि.

नया खिलौना और वास्तविक दात

गायत्री का अनुष्ठान करने वाले और अधिक जप

करने वाले सदा इस प्रतिक्षा में व्याकुल रहते हैं कि हमें कोई प्रकाश मिल जावे। यह उन साधकों की भूल है।

गायत्री अनुष्ठान में परमात्मा की सबसे बड़ी कीमती दौलत यह माननी चाहिए कि हमारी बुद्धि पवित्र हो जो प्रभु आज्ञानुकूल मार्ग पर ही चलती रहे। जब बुद्धि पवित्र होगी तो भर्गः अपने आप मिलने लग जायेगा अधिकार के अनुसार। जब किसी को ऐसे अनुष्ठान करने से किसी महापुरुष के-भगवान राम, भगवान कृष्ण, भगवान दयानन्द, भगवान बुद्ध, गुरु नानकदेव आदि के कभी-कभी दर्शन होने लगते हैं, तो साधक बड़े प्रसन्न होते हैं कि अब प्रभु की उन पर कृपा हो गई। हमें कुछ मिल गया। कभी अपने आप ही गायत्री मन्त्र को माता रूप से सम्बोधित करते हुए कभी उसे उलाहना देते रहते हैं और कभी हुज (आशा या आग्रह) करते हुए और अपनी समझ में वे माता से वार्तालाप कर रहे हैं और प्रश्न उत्तर स्वयं मन करता रहता है। कभी पापों की स्मृति आ-आकर रूलाती है और जब इनमें से कोई अवस्था उनको प्राप्त न हो तो उदास हो जाते हैं कि शायद हमारा जप निष्फल जा रहा है। उनकी से सब बातें बच्चों को बहलाने का काम करने वाली है। ठीक भी है, क्योंकि इनको बड़ी प्रसन्नता अनुभव होती है। परन्तु है यह ऐसा

जैसे माता पिता छोटे बच्चे को मिट्टी के या तिनकों या घास के खिलौने, झुन्झने दे देवें और बच्चा उनके साथ ऐसा रीझता और प्रसन्न होता है कि खाना भी उसे प्यारा नहीं लगता। यदि खिलौना कोई खोस लेवे या टूट जावे तो जार–जार रोता है।

ऐसे साधक के लिए तो ये बातें खिलौना मन बहलाने का सामान है। वास्तव में तो कुछ भी नहीं। जैसे बच्चा बड़ा होकर अपने खिलौने मिट्टी के आप बनाता है और उन्हें घोषणा करके बेचता है, झूठ मूठ इसमें बहुत प्रसन्न रहता है। यह दूसरी अवस्था भी बच्चों का मन बहलावा है।

तीसरी अवस्था है, जब बच्चा बड़ा हुआ, उसे ज्ञान हो जाता है, कि ये सब खिलौने हैं और नकली सौदे हैं। अब उनकी तरफ उसे न प्रीति है न विचार तक भी। उसे कोई देवे तो उसे अपील नहीं करते। हां अब अपने माता पिता की कमाई की सम्पत्ति उसे मिले तो प्रसन्न होता है।

ऐसे ही साधक को जब पवित्र बुद्धि, पवित्र ज्ञान पवित्र विचार आने लगते हैं, तो समझो यह वास्तविक दौलत है, भर्गः मिलने वाली है। किसी को ऐसी उतावल नहीं करनी चाहिए। सन्तोष रूप से प्रभु के अर्पण होकर

बुद्धि निर्मल मांगनी चाहिए।

२६–१०–४० प्रातः ४ बजे शनिवार

११ कार्तिक कृष्ण दशमी सं० १९९७ वि०

पांच प्रकार के मनुष्य

पांच प्रकार के मनुष्य हैं। एक तो वह है जो बिना किसी साधन (घड़ी या चौकीदार या घन्टा या शंख) के ठीक समय पर ब्रह्म मुहूर्त में जाग कर प्रभु आराधना में बैठ जाते हैं। इन पर प्रभु दया होती है।

दूसरे वह हैं जो किसी साधन से ठीक समय पर जो निश्चित किया है, जागकर प्रभु भक्ति में लग जाते हैं। इन पर अपने आपकी दया समझनी चाहिए। इनके कई साधन हैं—उत्तम, मध्यम, निकृष्ट। जो रात को अपने मन से कह देते हैं कि मुझे अमुक समय पर जगा देना—यह उत्तम। जरा सी आहट या किसी के पास आकर खड़े होने से, उसकी छाया मात्र पड़ने से जाग जाना—मध्यम। एक आवाज देने पर तुरन्त जाग जाना—निकृष्ट।

तीसरे वे मनुष्य हैं, जो आवाज से तो नहीं जागते हाथ लगाने से उठ बैठते हैं और फिर प्रभु आराधना में बैठ जाते हैं। यह मनुष्य (बुजुर्ग, मित्र, हितचिंतक) दया

के अधीन होते हैं। अर्थात् इन पर बुजुर्गों की दया होती है।

चौथे मनुष्य वह है जिन्हें बार–बार हाथ लगाना, जोर से आवाज दे, पासा बदल–बदल उठाया जाता है और वह उठकर प्रभु पूजा में लग जाते हैं। यह तमोगुणी अवस्था में हैं। इन पर डंडे की दया होती है।

पांचवें वे हैं जिन्हें उठाया जाता है या वे स्वयं उठते हैं समय पर परन्तु फिर सो जाते हैं। प्रभु भजन से वे वंचित रह जाते हैं। ये मन्द भागी होते हैं। पर इनमें भी दर्जे हैं–

क) जिनको प्रभु स्वयं समय पर जगाते हैं और वे फिर सो जाते हैं।

ख) जो अपने मन को कह कर सोते हैं और समय पर उठते हैं और फिर सो जाते हैं।

ग) जो आवाज से, आहट से, साथ सोये मनुष्य से जाग कर फिर सो जाते हैं।

घ) जो हाथ लगाकर उठा देने से भी फिर सो जाते हैं।

ङ) जो उठते ही नहीं। ये उत्तरोत्तर मंदभागी होते हैं।

६–२५ (सम्बन्धित २–८–४०) तथा (२०–१२–४० पर भी सायं ५–४५ वाला तथा ७–१२–४० भी)

प्रश्न–अन्तःकरण को कौन–कौन सी वृत्ति अपवित्र करती हैं ?

उत्तर–बुद्धि को लोभ वृत्ति, मन को मोह वृत्ति चित्त को काम वृत्ति, अहंकार को अहंकार वृत्ति दूषित करती हैं।

बुद्धि जब प्रभु में विश्वास और निश्चय, अपने कर्मों की प्रारब्ध या भोग में विश्वास नहीं रखती तब ही लोभ पैदा होता है। अन्याय और अधर्म की सोच विचार मनुष्य बुद्धि से सोचता है। मन में सत् की धारणा न होने से मोह अधर्म कराता है और चित्त को कुवृत्तियां, काम वृत्तियां, कामनाओं के कारण मलिन करती हैं और ध्यान नहीं लगने देती, चंचल रखती हैं।

२७–१०–४० प्रातः ३–४५ बजे रविवार
१२ कार्तिक कृष्णा एकादशी सं० १९९७ वि०

विवेक का डंडा साथ रहे

संसार में जिन मनुष्यों की दृष्टि निर्बल होती है, वे अंधेरे में बहुत संभल–संभल कर नीचे देखकर कदम

रखते हैं। जिनकी आंख अधिक कमजोर होती हैं, वे प्रकाश में भी नीचे देखते और संभलकर कदम रखते हैं। धीरे-धीरे चलते हैं। फिर डंडा भी साथ रखते हैं।

आध्यात्मिक जगत् में जिनकी अन्तर्दृष्टि बहुत बलवान होती है और दिव्यदृष्टि होती है, वे ही इस संसार के व्यवहार में धीरे-धीरे संभल-संभल कर कदम रखते हैं। सदा नीची गर्दन किये रखते हैं और ज्ञान-विवेक का डंडा भी साथ रखते हैं, चाहे प्रकाश हो या अज्ञान के वातावरण में।

३०-१०-४० प्रातः ५ बजे बुधवार
१५ कार्तिक अमावस्या दीपमाला सं० १६६७ वि०

कमंडल डंडा और कम्बल

दीपमाला सदा अमावस्या की तिथि पर आती है, जब कि कुदरती तौर पर चन्द्रमा बिल्कुल न होने से बहुत गहरी अन्धेरी रात होती है। ऐसे दीपमाला का क्या प्रयोजन है ।

उत्तर-प्रत्येक मनुष्य प्रकाश चाहता है। आर्य जाति के लोग भारत में चारों तरफ प्रकाश रखते थे, जबकि दूसरे देशों में अमावस्या की तरह अज्ञान, अंधकार की

काली रात होती थी। वह प्रकाश क्या है ?

तीन प्रकार का प्रकाश होता है–ज्ञान का प्रकाश, शासन का प्रकाश, धन का प्रकाश। भारतवासी लक्ष्मी पूजन क्यों करते हैं ? अब तो धन का पूजन करते हैं। वास्तव में तो लक्ष्मी एक शक्ति है, विष्णु नारायण की। लोग इसी दिन (दीपावली को) विष्णु की पूजा तो नहीं करते, शक्ति (=लक्ष्मी) की करते हैं वह शक्ति है माता–मातृशक्ति। क्योंकि जितना भी प्रकाश मनुष्य का गिना जाता है, वह मति के द्वारा समझा जाता है और माता मति को बनाने वाली को कहते हैं।

पूर्व काल में भारतीय मातायें तीन प्रकार के बच्चे (संतान) पैदा करती थीं। एक–भक्त विद्वान् ज्ञानी–ब्राह्मण, दूसरे–शूरवीर--क्षत्रीय, तीसरे–दानी (वैश्य)। बेकार और दास संतान उत्पन्न न करती थीं। इसलिये तीन चीजें प्राप्त थी देश को अर्थात् मातायें और देश साध्वी सम्पत्ति रखते थे–कम्बल, कमन्डल और डंडा।

डंडा–राजशक्ति–शासन–सुराज्य। कम्बल–कला–कौशल, व्यापार जो नंगापन को ढके। तीसरा कमन्डल जिसमें जल होता है, जो सन्तप्त हृदय को शान्ति देने वाला होता है और जल सब सम्पत्ति का बीज है।

अब (मातायें) न ईश्वर भक्त पैदा करती हैं, न सच्ची शान्ति देने वाला कमंडल हैं। न शूरवीर पैदा करती हैं। न सुराज्य है, न डंडा रहा है। न दानी पैदा करती हैं–इसलिये न कम्बल है। अर्थात् न कला कौशल अपने अधीन है। इन सबका एकमात्र कारण ब्रह्मचर्य का अभाव है।

ब्रह्मचर्य सब अंगों का केन्द्र (Centre) है।

बुद्धि पवित्र होने के चिन्ह

(२) बुद्धि के पवित्र हो जाने के क्या चिन्ह हैं ?

उत्तर–बुद्धि जब पवित्र हो जाती है तो 'भूः' का अर्थ है प्राण रक्षक अर्थात् मनुष्य जितनी चिन्ता अपने अस्तित्व के लिए करता है, उतनी चिन्ता दूसरे प्राणी के अस्तित्व के लिए भी करने लग जाता है। शारीरिक रक्षा स्वच्छ जल, सुन्दर वायु और विचार, पवित्र अन्न से होती है। वह ये तीनों साधन दूसरे के लिए भी बर्तता है। अकेला नहीं मौज उड़ाता और इनमें से किसी चीज को दूषित नहीं करता। वे सब काम, जिनसे ये तीन चीजें बिगड़ें उनका सुधार करता है।

भूः प्रनातु शिरसि–भूः का सिर से सम्बन्ध है।

भुवः का भर्गः से। दुःख पाप से पैदा होता है। भुवः दुःख विनाशक है, तो भर्गः यह तेज है जो पाप को नाश करता है।

स्वः का वरेण्यं से सम्बन्ध है कन्या वर ली है पति को अपने आनन्द के लिए। स्वः आनन्द स्वरूप है। वरेण्यं श्रेष्ठतम जाति काबिल वरने के हैं।

जब वर लिया प्रभु को (=भक्त ने), यह आनन्द स्वरूप है, तो उसकी सम्पत्ति आनन्द भक्त–वरने वाले को मिल गई।

बुद्धिं पवित्र से क्या होगा ? परमात्मा हृदय में तो आता है, मगर समझ में नहीं आता (अर्थात् हर समय स्मरण नहीं रहता)। इसलिए बुद्धि पवित्र हो जाए तो वह समझ में आ जाए।

ता० २–११–४० प्रातः ५ बजे शनिवार
१८ कार्तिक शुक्ला तृतीया सं० १९९७ वि०

मति अति आवश्यक है

लोक व्यवहार में और परलोक सुधार में मति की ही अधिक आवश्यकता है। व्यवहार में मति शक्ति और

सम्पत्ति चाहिए। सम्पत्ति से व्यवहार चलेगा, मति चलावेगी, शक्ति इसकी रक्षा करेगी। लोक सुधार में बुद्धि, बल, धैर्य चाहिए। शरीर में बल, मस्तिष्क में बुद्धि और मन में धैर्य, तब काम चलेगा।

मल भी शुद्ध पवित्र हो

(२) शरीर में जो बल है वह मल का है, मगर मल भी शुद्ध और पवित्र मल हो। वह मल क्या है ? मल में रस, रक्त, चर्बी, मज्जा, बलगम, वीर्य, अस्थि आदि सब मल है। पखाना पेशाब आदि सब मल हैं। जिसके रक्त में कालापन होगा वह बीमार समझा जाएंगा। जिसका बलगम पीला होगा वह रोगी समझा जायेगा। जिसके मल मूत्र में दुर्गन्ध होगी वह स्वस्थ नहीं होगा। अर्थात् शरीर में मल की शुद्धि की आवश्यकता है। तब बुद्धि की पवित्रता की तो अधिक ही आवश्यकता है।

(३) धन भी एक मल है। इसलिए धनपति लोगों को मल की पदवी लगाकर पुकारते हैं, जैसे सेठ करोड़ी मल, गूजर मल, हकूमत मल, जेसा मल आदि।

प्रभु दया और हमारा कर्त्तव्य

(४) (कल रात का विचार) प्रभु दया किसे कहते हैं?

जो बिना किसी–किसी की अपनी इच्छा या संकल्प, मेहनत, पुरुषार्थ किए, प्रभु स्वयं अपनी कला से प्रदान करता है, वह प्रभु दया है। अर्थात्–

(१) हम श्वांस लेते हैं, मगर अपने आप प्रभु कला से आ जा रहा हैं, हमें जीवन दे रहा है। हमारे किसी काम में रुकावट नहीं। हम सब काम करतें रहते हैं मगर श्वास लेने या निकालने के लिए इच्छानुसार कोई समय काम से निकाल कर नहीं देना पड़ता।

(२) खुराक खाते हैं, तब दांत अपने आप काम करने लग जाते हैं। वह सब अपने आप टिकते हैं और जाबड़ा साथ हिलने लग जाता है। कण्ठ अपने आप निगल जाता है।

(३) समान वायु पेट में अपने आप उसे कोल्हू में पेल कर (=लग कर) रस बना देती है।

(४) वही रस पक कर बिना हमारे ज्ञान के, रक्त, बलगम, पीप, अस्थि, मज्जा, वीर्य, बाल–खाल तक स्वयं बनाता और मल मूत्र अपने आप स्थान पर उसकी कृपा से जा रहा है। यह है प्रभु की दया। यह किसी काम के बदले में नहीं। यदि यह काम भी हमको करने पड़ जाते

तो हमको विशेष कष्ट होता। इसलिये इस प्रभु दया के बदले में हमको प्रभु भक्ति करनी चाहिए। हमारा प्राण और प्राण के आधार से बना शरीर का बल प्रभु अर्पण होता रहना चाहिए। प्रभु प्रतिदिन यह काम शरीर में कराते हैं, हमें भी नित्य प्रभु की भक्ति करनी चाहिए।

जो दोगे वही मिलेगा

(५) जो वस्तु दी जायेगी, वही वस्तु मिलेगी। नींद का दान प्रभु को अर्पण करो तो वह अपनी गोद की नींद देगा। जो व्यक्ति नींद दान देगा नहीं तो वह प्रभु गोद का विश्राम कैसे लेगा।

सामान्य और विशेष पूजा

(६) प्रभु पूजा अनेक साधनों से की जाती है। एक सामान्य और दूसरी विशेष। सामान्य का फल सामान्य और विशेष का फल विशेष। सामान्य कर्म तो कर्त्तव्य पालन ऋण उतारने का है। विशेष कर्म उधार फैलाना, देना होने के समान है।

जो व्यक्ति प्राणायाम इसलिए करना चाहता है कि उससे शारीरिक लाभ हो तो वह साधारण प्राणायाम कर सकता है। यदि वह प्रकाश और शान्ति चाहे तो फिर

उसे अधिक करना, उद्देश्य बनाना और ब्रह्मचर्य का अति कठिन पालन करना, व्यवहार में लिप्त होना, सांसारिक बखेड़ों से विस्मृति की इच्छा हृदय में रखनी, करनी, रहनी चाहिए। नहीं तो साधारण सामान्य सब अमल कर लेने चाहिएं।

आत्म-बल बढ़ाने के लिए

(७) जो लोग व्रत जप तप यज्ञ सत्संगादि के कमजोर पहलू को सामने रख कर व्रत आदि करते हैं तो उनकी आत्मा में बल कभी नहीं आता। बलवान पक्ष सामने रखना चाहिए, तब आत्मा का बल बढ़ेगा।

१–३५ मध्यान्ह

पाप का अंकुर

मनुष्य कभी–कभी ऐसे कर्म करता है जिनका पाप तो उसे नहीं लगता, न उसकी कोई सजा उसे मिलती है, किन्तु कुसंस्कारों का भंडार इकट्ठा करता है। जैसे एक लड़का अपने घर में मां की टोकरी (सुंधड़े) से बिना मां के पूछे रोटी उठाकर खा लेता है या कोई वस्तु पैसा आदि उठा लेता है। मां उसे देख भी लेवे तो उसे कुछ

नहीं कहती किं इसने ही आगे पीछे खानी है। फिर बड़ा होकर मालिक होकर भी दरवाजा मूंद कर, छिपाकर अपनी चीज खा लेता है, तो मन में यह पाप करने का संस्कार पैदा हो गया जो आगे उससे पाप करायेगा।

दृश्य

एक कंजूस धनी मगर सामने देखकर शर्म करने वाला है। उसके बच्चे हैं। फल सामान उसके पास आता है। वह अपने हाथ से किसी को नहीं देता। फल मेवा सूख जाते हैं। बच्चे तरसते रहते हैं। किसी ने समझाया बच्चों को–पिता का माल है, उसकी अनुपस्थिति में खा लिया करो। यदि नाराज होवे तो फिर कभी न उठाना। यदि कुछ ना कहे तो आनन्द करना।

लड़के ऐसा करते रहे। बाप कुछ न कहता रहा कि चलो बच्चे हैं, अपना इनका माल है। मगर लड़कों में यह आदत, बड़े होने पर पाप करने पर लाचार करेगी।

३–११–४० प्रातः ४ बजे रविवार

१६ कार्तिक शुक्ला चतुर्थी सं० १६६७ वि०

अवगुण त्याग अत्यावश्यक

कोई भी व्यक्ति ऊंचा नहीं बन सकता जब तक वह

अवगुण का त्याग नहीं करता, चाहे उसमें गुण आते भी रहें। ऊंचाई की कसौटी हृदय का सन्तोष शान्ति है, और शान्ति बिना त्याग के नहीं हो सकती। इसीलिये गुणों के आने के साथ अवगुणों का त्याग जो करता है, वह लोगों की दृष्टि में, परमात्मा के दरबार में ऊंचा गिना जाता है।

३—३० दोपहर पीछे

सकाम कर्म भक्ति ज्ञान

सकाम कर्म का फल अर्थ की सिद्धि। सकाम भक्ति का फल दुःख से दूरी, दुःखों की निवृत्ति, सकाम ज्ञान का फल सांसारिक सुख। यह एक पूजा है जिसमें विस्तृत समुद्र भरपूर है।

७—३० सायम्

नुक्ताचीनी से पतन

मनुष्य का जप तप सब खड्डे में पड़ जाता है, जब वह अपने मन में दूसरे की बिना कारण नुक्ताचीनी (=छिद्रान्वेषण) करता है। अपने विचार बुद्धि मन को दूषित कर देता है, इसलिए उन्नति से रुक जाता है।

४–११–४० प्रातः ४ बजे सोमवार
२० कार्तिक शुक्ला पंचमी सं० १६६७ वि०

निष्काम ज्ञान भक्ति कर्म

१–निष्काम कर्म का फल मृत्यु को जीतना, निष्काम भक्ति का फल जन्म से छूटना और निष्काम ज्ञान का फल मुक्ति।

जब तक मनुष्य को निष्काम ज्ञान न हो, तब तक निष्काम कर्म निष्काम भक्ति कर ही नहीं सकता। निष्काम ज्ञान ही कर्म और भक्ति में प्रवृत्त कराता है।

जाप बार बार क्यों किया जाए

२. मनुष्य में सबसे बड़ी निर्बलता है, स्मृत्ति की। सैंकड़ों हजारों बार घटनाओं को आंखों से देखा, कानों से सुना–फिर भी ऐन (=ठीक) समय पर प्रभु की सत्ता भूल ही जाती है जिसके कारण मनुष्य पाप में प्रवृत्त हो जाता है। स्मृति बढ़ती है स्मरण से। जब तक स्मरंण बार–बार न किया जावे तब तक प्रभु सत्ता की स्मृत्ति नहीं आयेगी।

गायत्री जप में क्या मांगें ?

३. वह व्यक्ति बुद्धिमान नहीं गिना जाएगा, जिसे

वर देने वाला कहे कि लो यह लाल हैं, जवाहर है, हीरा और मोती है, सोना चांदी लोहा तांबा कौड़ियां पत्थर हैं, चुन लो। तो वह कंकर और कौड़ी पर हाथ रखे। यह बुद्धि बाल बुद्धि होती है। जैसे बच्चा लड्डू और खिलौने पर तो लपकता है मगर अशर्फी रुपये को उठाकर फैंक देता है।

ऐसे ही वरदा वेदमाता गायत्री पतित पावनी जो आयु, प्राण प्रजा पशु कीर्ति धन ब्रह्मवर्चस और परमात्मा तक प्राप्त कराती है, उससे जपते–जपते ब्रह्मवर्चस और परमात्मा को छोड़कर शेष कोई चीज मांग ली जावे तो वह व्यक्ति या उपासक भक्त कब बुद्धिमान कहलावेगा ?

६–११–४० प्रातः ६–३० बजे बुधवार
२२ कार्तिक शुक्ला सप्तमी सं० १९९७ वि०

बिना उद्देश्य का व्रत निष्फल

व्रत में उद्देश्य का होना आवश्यक है। बिना उद्देश्य केवल उपवास मात्र व्रत किसी काम का नहीं गिना जाता। वह केवल शरीर के लिए है पर जो आजकल स्त्रियां या पुरुष एकादशी का व्रत करते हैं, बिना उद्देश्य इस तरह हानिकारक होता है। व्रत आत्म–निरीक्षण की खातिर होता है। जिससे अन्तःकरण पवित्र होता है।

८–११–४० प्रातः ६ बजे शुक्रवार
२४ कार्तिक शुक्ला नवमी सं० १९९७ वि०

उघरेहि अन्त न कोई निबाहू
(राम चरित मानस)

पापी का पाप कब तक लोगों को नहीं अखरता ?

जब तक कि वह परोपकार और नेक काम भी साथ करता रहे। ज़ब भी उसका नेक काम बन्द हुआ उसी दम (=समय) से उसके पापों से लोगों को घृणा प्रारंभ हो जाती है।

जैसे नाली का गन्दा पानी। जब तक उसके ऊपर पानी बहता रहता है, तब तक दुर्गन्ध नहीं सताती। जब वह रुक गया—ठहर गया तब दुर्गन्ध आने लग जाती है। (ता० १० का लेख अनुपयोगी होने से छोड़ दिया है)

१२–११–४० प्रातः ६–३० बजे मंगलवार
२८ कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी सं० १९९७ वि०

जप में ज्ञान श्रद्धा और एकाग्रता आवश्यक है

गायत्री मन्त्र के जाप तथा उच्चारण में जो–जो शब्द जिस–जिस स्थान से सम्बन्ध रखता है उस–उस

स्थान से स्पर्श करे तो उस–उस स्थान को जाग्रत करता और प्रभावित व पवित्र करता है। मन्त्र को जीवित करने के लिए प्राण की आवश्यकता है।

जैसे वृक्ष प्रकाश हवा और पानी से जीता है। इनमें से यदि एक चीज भी न मिले तो सूख जाता है। ऐसे ही गायत्री जपने के लिए ज्ञान (प्रकाश), श्रद्धा (जल), स्पर्श–एकाग्रता (वायु) चाहिए तब मन्त्र जीवित हो जाता है।

१३–११–४० प्रातः ६ बजे बुधवार
२६ कार्तिक शुक्ला चौदस सं० १६६७ वि०

मंत्र का स्पर्श और प्रभाव

मन्त्र का स्पर्श किसको होता है और कैसा प्रभाव होता है ?

जैसे कोई उपदेशक बात सुनाता है तो मन को ऐसी लगती है अपने आप आंसू निकल पड़ते हैं। कभी मुख से हंसी ही आ जाती है। कभी मनुष्य शब्द सुनकर मस्तिष्क से हैरान और सहम सा जाता है। कभी तमाम रौंगटे खड़े हो जाते हैं। कभी सुनते हुए पिछली बात कार व्यवहार, कार्य का विचार, आकर सब विस्मृति हो जाती हैं और ऐसी छाप लगती है कि पिछली सुनी हुई बात

स्मरण ही नहीं आती। वही नई वाणी पर सामने फिरती है। यह है शब्द का स्पर्श करना। जिस–जिस स्थान पर स्पर्श किया, जैसा शब्द (=वक्ता) से निकला वैसा प्रभाव डाला। शब्द के स्पर्श जीवन को बदल देने वाले होते हैं।

२१–११–४० प्रातः ३ बजे वीरवार
७ मघर (=मार्ग शीर्ष) कृष्णा षष्ठी सं० १६६७ वि०
(सम्बन्धित ६–८–४०)

माता बनाने के लिए कन्या का जन्म गृहस्थी के घर में होता है। वह जननी ऐसी शिक्षा देवे कि वह (=पुत्री) सोलह (१६) वर्ष की आयु तक माता बनने के योग्य हो जावे अर्थात् वह अपनी संतान को मति देने वाली बन जावे। माता को पहला गुरु इसीलिए कहा जाता है। मति देने और मति बनाने वाले को ही गुरु का दर्जा दिया जाता है। केवल जननी को नहीं। इसीलिए पशु की माता अपने बच्चे की गुरु नहीं कहलाती।

२. किस किस्म की मति दे और मति की आवश्यकता क्यों है ?

मनुष्य समाज का आदमी (=अंग) है। परस्पर सम्बन्ध और व्यवहार के लिए मति की आवश्यकता होती है।

बिना मति वह कोई व्यवहार नहीं कर सकता। (माता) ऐसी मति दे जिससे सदा यश और बल को प्राप्त करता हुआ सुख और शान्ति फैला सके।

नेक काम करने से यश होगा और प्रभु भक्ति से बल बढ़ेगा और ज्ञान से शान्ति प्राप्त होगी और शान्ति फैला सकेगा।

तीन प्रकार की मत्ति

३. तीन प्रकार की मति को जब कन्या प्राप्त कर लेवे तब वह माता बनने की अधिकारिणी बन जाती है। भूः १, भवः, २, स्वः ३। १—आयु, सेहत कैसे बढ़ सकती है। २—दुःख कैसे दूर किये जा सकते हैं। दुःखों का मुकाबला कैसे किया जाता है। ३—सुख किस प्रकार प्राप्त किया जाता है।

मानव के दो हथियार

४. प्रभु ने मनुष्य जाति में माता के दो ही स्तन क्यों उत्पन्न किये ?

उत्तर—एक स्तन के पिलाने से बच्चे में धीरता, दूसरा स्तन पिलाने से वीरता भर देने के लिए प्रदान

किये। वीरता से शत्रुओं का मुकाबला और धीरता से आपत्ति मौका सामना करने के लिए। ये दो हथियार मां अपनी घुट्टी—दूध की अमृत घुट्टी से बच्चे के अन्दर लगा देती है और सजा (सुन्दर बना) देती है, यदि मां—माता (मति रखने वाली) हो। इन दो हथियारों के बिना मानव अपने जीवन में असफल रहता है। (२२—११—४० का विचार २३ के आगे लिखा जायेगा)।

२३—११—४० प्रातः ३—३० शनिवार
६ मघर (=मार्गशीर्ष) कृ० पक्ष नवमी सं० १९९७ वि०

सम्बन्धों की गूढता

सीधा सम्बन्ध (बिना किसी बनाव लगाव के) माता—पुत्र, गुरु—शिष्य, स्त्री—पुरुष, भक्त और भावना में सम्बन्ध तो प्रेम का है और चारों में छोटा बड़े की सम्पत्ति का अधिकारी होता है मगर पुत्र माता से सदा मांगता ही मांगता है, देता कुछ नहीं और यह सम्बन्ध होता भी बिना प्रतिज्ञा के है। शेष तीनों में छोटा अपने आपको बड़े के अर्पण ही अर्पण करता है और प्रतिज्ञा रूप से। बड़ा छोटे को ग्रहण और स्वीकार करता है—'ममचित्तमनुचित्तं ते अस्तु'। इसलिए इस अवस्था का मिलान—जागृत=पुत्र

माता, सुषुप्ति=स्त्री–पुरुष, समाधि=शिष्य गुरु, मुक्ति=भगवान के आनन्द के तुल्य है।

२८–११–४० प्रातः ६ बजे वीरवार
१४ मघर कृष्णा चौदस सं० १६६७ वि०

विषयों के चूहे

मनुष्य का शरीर एक कपड़ा है। जैसे कपड़े को माया घेर लेवे अर्थात् उस पर माया लग जावे तो चूहे इसे रात्रि को अंधेरे में काटते हैं, जब कि वह कपड़ा मायावी अपने मालिक से उतर कर अलग पड़ जावे। ऐसे ही जब मनुष्य शरीर माया कमाकर मायावी बन जाता है, तो प्रभु, जो उसका मालिक है, उससे दूर अलग हो जाने पर विषय वासनाओं के चूहे उसे काट–काट खाते हैं और छिद्र–छिद्र कर देते हैं।

२६–११–४० दिन के ११ बजे शुक्रवार
१५ मघर (=मार्गशीर्ष) अमावस्या सं० १६६७ वि०

कन्या का महान् त्याग

अपने को अपना समझना, अपना जानना, अपना बनाने में कोई कठिनाई नहीं होती और बुद्धि की भी

आवश्यकता नहीं होती, पराये को अपना समझना, अपना जानना और फिर अपना बनाना बहुत कठिन काम है।

इसके लिए विशेष बुद्धि, ज्ञान की आवश्यकता है। अपना बनाने में बहुत तप और त्याग की आवश्यकता है। विवाह–संस्कार में–वि=विशेष, वाह=कायदा ढंग, तरीका सिखाया जाता है। त्याग और सेवा, प्रेम और प्रसन्नता की शिक्षा का नमूना बताया जाता है। कन्या ही इस कठिन काम की शिक्षा माता–पिता से ग्रहण करती है। माता पिता के घर का त्याग, पति और पति के परिवार की सेवा, पति प्रेम और पारिवारिक प्रसन्नता पैदा करती है। अपने माता–पिता, भाई बन्धु तो सभी स्वाभाविक अपने थे। अब वह पराये घर के उत्पन्न को अपना स्वामी बनाती है। उस स्वामी के माता पिता को अपना माता पिता, उसके भाई बहनों को अपना भाई बंहन समझती और उसके परिवार को ही अपना परिवार जानती समझतीं और बनाती है। उनको ही ले देकर अपना बनाती है। माता पिता को तो कुछ कौड़ी भी नहीं देती बल्कि माता–पिता से जो कुछ लेती है उसे भी अपने पति के परिवार में बांट देती है। यह कितने आश्चर्य का त्याग और बहुत बहादुरी है। त्यागी ही वीर और बहादुर होता है।

बड़ी कठिनाई का हल समाधान स्त्री है। पराये को अपना बना लेना ही सबसे कठिन और मुश्किल काम है।

स्त्री जब अपने पति के दूर और नजदीक के परिवारों को अपना जानने लग जाती है तो वह अपना परिवार विस्तृत समझती है। इसके अभ्यास को बढ़ाने से वह परमात्मा को, जो पतियों का पति है, उसके परिवार को अर्थात् विश्व परिवार को भी अपना जानने अपना बनाने के योग्य हो जाती है। अपनी सम्पत्ति, जो माता–पिता अथवा पति से मिले, उसे उसके (=प्रभु के) परिवार में बांटती है। इस समय परमात्मा ही इसका पिता और पति होता है। इसकी सब सम्पत्ति उसके विश्व परिवार में बांट देती है। गरीब अनाथ हो तो परमात्मा के ही समीप का परिवार समझने लग जाती है और अन्य सब को दूर का परिवार। पर सबको अपना परिवार समझने लग जाती है।

२. (२२–११–४०) का विचार यहां लिखा जा रहा है।

लाजा होम के समय कन्या आहुति देते समय परमात्मा से प्रार्थना करती है–दिव्य स्वरूप परमात्मा हमको इस पितृ कुल के खानदान से छुड़ावे और पति के साहचर्य से न छुड़ावें–

ओं स नो अर्यमा देवः प्रेतो मुंचतु मा पतेः स्वाहा।

भरी सभा में कन्या का अपने माता–पिता के घर और उसके सामने ऐसी प्रार्थना करना कि हमें पिता के कुल से छुड़ा ! सोचो !! उसे कौन सा दुःख है कि वह अपने जन्म देने वाले, लाड़ प्यार से पालने वाले, हर तरह से न्यौछावर होने वाले, माता पिता के लिए कहती है कि हे प्रभु ! इनसे छुड़ा !! इसका कितना कमाल है !!!

स्वतन्त्र होने, स्वामी बनंने, संसार में उपकार करने और शान्ति सुख फैलाने की कितनी भारी चाह है। जैसे एक बी.ए का विद्यार्थी, जिस पर प्रिंसीपल और प्रोफेसर अत्याधिक कृपालु हैं, उसके साथी विद्यार्थी भी प्रेम और प्यार करते हैं, जब वह अपना कोर्स पास कर लेता है, तो एक मिनट के लिए भी वहां ठहरना नहीं चाहता, मैदान में आना चाहता है। ऐसे ही कन्या, जब सोलह वर्ष पर्यन्त अपने कोर्स को माता–पिता के घर में पूरा कर लेती है तो वह माता बनने, स्वाधीन बनने और जगत् उपकार करने के लिए उस घर को खुशी–खुशी छोड़ देती है कि उसकी उन्नति की मंजिल अब सामने खड़ी है। यहां रह जाने से वह तरक्की नहीं कर सकती। त्याग, प्रेम, सेवा और उपकार नहीं कर सकती।

१–१२–४० दोपहर २–३० रविवार
१७ मघर (मार्ग०) शुक्ला द्वितीया सं० १९९७ वि०

एक समय का आहारी

जो मनुष्य साधारण या साधक एक समय अन्न खाता है, दूसरे समय नहीं खाता, वह सदाव्रती है। इसमें भावना का प्रभाव मन और शरीर पर पड़ता है। जो तो व्रत रूप से नहीं खाता, उसका मन बलवान काया नीरोग रहती है। और जो लाचारी से नहीं खाता कि उसे प्राप्त नहीं, या प्राप्त तो है पर आलस्य से बनाता नहीं, इसलिए नहीं खाता, तो उसका मन तामसिक वृत्ति का होगा और शरीर निर्बल होगा। यदि रात्रि को भूख मिटाने के लिए वह दिन को बनाकर कुछ बचा रखता है कि इसी पर निर्वाह कर लूंगा रात को बनाने का कष्ट न करना पड़े, तो वह पुरुषार्थ हीन भी तामसिक वृत्ति मन में उत्पन्न कर रहा है। लाभ नहीं होगा।

२–१२–४० दोपहर २–३० सोमवार
१८ मघर (=मार्ग०) शुक्ला तृतीया सं० १९९७ वि०

स्वप्न (कुटिया पर) जरूरत ही रस है

भजन करते समय ऊंघ सी आ गई और उसमें

उपदेश हो रहा है। किसी ने प्रश्न किया–संध्या भजन में रस नहीं आता।

उपदेशक ने उत्तर दिया–बेटी जरुरत ही रस है। पेट में सख्त भूख है खाने की जरूरत है तो जो भी साधारण से साधारण वस्तु उस समय प्राप्त हो गई उसमें ही कमाल का रस आता है। व्याकुलता के समय में जो रोना आता है, और प्रार्थना होती है, उसमें कितना रस आता है। परिश्रम और मतलब (=प्रयोजन) दुःख कष्ट के समय जो जप आराधना की जाती है उसमें कितना बड़ा रस आता है।

बस परमात्मा की जब आवश्यकता अनुभव होगी तब प्रभु नाम लेने में बड़ा रस आयेगा। यही अन्तिम गुर है कि जरूरत ही रस है।

३–१५ अपरान्ह (दोपहर पीछे)

संसार कांटों की बाड़ है

भजन में ऊंघ आ गई। एक कुआं के क्षेत्र से मार्ग था। गुजरे–एक और आदमी साथ था। मगर न शक्ल न उसके नाम का पता। चलते–चलते ऐसे स्थान पर पहुंच

गये जहां कांटों की बाड़ है। (ढींगर दिये हुए हैं)। साथी झाड़ियों को दबाकर पार हो गया तो दो किसान मुसलमानों ने, जो दूर बैठे हुए थे, गालियां निकाली, कठोर बोले। मैंने कहा—यह बतलाओ फिर कहां से मार्ग है ? साथी से कहा—मैं तो वहां से जाऊंगा। वह बोले पीछे मुड़ आओ, यह सब बन्द है, कोई मार्ग नहीं है। दृष्टि दौड़ा कर देखा तो सब कांटे ही कांटे की बाड़ लगी हुई है। कोई स्थान खाली मार्ग का दिखाई नहीं देता।

मैंने कहा—भाई इतनी दूर फिर वापिस आना और फिर नये सिरे से यात्रा करना कठिन है। तुमने कोई मार्ग बना क्यों नहीं छोड़ा ? मैंने भी (यह) क्रोध से कहा। बस ऊंघ खुल गई। बहुत विचार किया, यह क्या चेतावनी है?

बहुत देर बाद कुछ ऐसी समझ आने लगी कि यह संसार कांटों की बाड़, विषय वासनाओं से घिरा हुआ है। चाहता सब कोई है इस बाड़ को लताड़कर सीधा पार होना। भाग्यवाला तो लताड़ लतूड़ कर पार हो जाता है, उसे वापिस नहीं मुड़ना (चक्कर आवागमन में आना) पड़ता, पर जो डरपोक होते हैं, उन्हें विषयों के मालिक धमका कर वापस बुला नया चक्कर लगवाते हैं। छलांग

लगाने वाला अभ्यासी तो बिना पैर रखे ही पार कूद जाता है और लताड़ने वाले को संभल–संभल कर कदम रखना पड़ता है।

जिनके पूर्व कर्म वैराग्य और ज्ञान के हैं, वे तो छलांग लगाकर पार हो जाते हैं और नये अभ्यासी, संभल–संभल, (आत्म निरीक्षण से) पार हो जाते हैं। मगर कच्चे घरड़ (अभ्यास में प्रथम आने वाले) पहुंच कर भी डरकर पीछे चक्कर में आ जाते हैं।

४–१२–४० प्रातः ४–३० बुधवार
२० मघर (=मार्गशीर्ष) शुक्ला पंचमी सं० १६६७ वि०

ज्ञान गुप्त रहना ही ठीक है

मरते समय मनुष्य की आंखें और मुंह तो खुलने लग जाते हैं, जिन्हें सम्बन्धी जो पास बैठे हुए होते हैं, बार–बार बन्द करने की कोशिश करते हैं। हाथ पैर टांगें सिकुड़ने और हिलने लग जाते हैं जिन्हें सम्बन्धी फिर जोर से फैलाने लग जाते हैं। यह उल्टा कार्य क्यों ?

उत्तर–ज्ञान गुप्त वस्तु है जिसे गुप्त रखना चाहिए नहीं तो अभिमान पैदा करता है। इसलिये ज्ञानेन्द्रियों को

बन्द करते हैं और वे जब खुलती हैं तो भयानक डरावनी मालूम होती है। कर्म को सदा फैलाना और सीधा रखना चाहिए। इसीलिये कर्म इन्द्रियों को फैलाते हैं, सिकुड़ने नहीं देते। संकुचित कर्म मनुष्य को नीच योनियों में ले जाता है। उदार कर्म मनुष्य और देवताओं की योनि में। ज्ञानी अपने अपको गुप्त न रखने वाला, अभिमान से दूसरे को भय देता रहता है।

सामर्थ्यवान उपकार अवश्य करे

स्वप्न–भजन करते समय ऊंध आ गई। मैं प्रिय चमन लाल जी सहगल से कह रहा हूं–बेटा कुछ काम ऐसा भी करना चाहिए जो केवल दूसरों की रोजी (निर्वाह) बनाने के लिये हो। आजकल बेकारी बहुत है। कितने ही बी०ए० बेकार फिर रहे हैं। तीस तीस रुपये की नौकरी भी नहीं मिलती। ईश्वर ने तुम्हें सामर्थ्य दी है, तो किसी एक की भी रोजी के लिए कोई काम कर दिया तो, सामर्थ्य सफल होगी।

अपने लाभ के भाव से वह काम न किया जावे। भाव तो केवल दूसरों की रोजी का हो। नफा अपने आप हो जावे, भले ही हो जावे। ऐसी कोई मद (=विभाग या

खाता) या उपाय निकालना चाहिए।

चमनलाल जी सुनकर कहने लगा—तो फिर मैं इस्तिहार दे दूं ? बी०ए० पास आ जावें। मैं उनसे कोई काम कराऊं। मैंने कहा—काम कराने के लिए अनुभव भी आवश्यक है, कोई शिक्षा तो काफी नहीं। हाँ उन्हें समझा दिया जावे। उनकी समझ (=बुद्धि) बड़ी तेज होती है। उन्हें किसी काम पर लगा दो या काम कराओ। यह स्वयं जानो।

७—१२—४० प्रातः ३—३० शनिवार
२३ मघर (=मार्ग०) शुक्ला अष्टमी सं० १९९७ वि०

अन्तःकरण की शुद्धि के उपाय

(सम्बन्धित २६—१०—४० प्रातः ६—२५ वाला)

मनुष्य के पापों से मलिन अन्तःकरण की शुद्धि प्रायश्चित् और पश्चात्ताप आदि भिन्न—भिन्न कर्मों से होती है। चित्त की मलिनता ज्ञानपूर्वक प्रायश्चित् कर्म से और मन की मलिनता व्याकुलता के साथ पश्चाताप और रुदन से। बुद्धि की मलिनता दान कर्म से और अहंकार की मलिनता, सेवा से, जो नम्र भाव से की जावे, उससे दूर होगी।

१०–१२–४० प्रातः ४–३० मंगलवार

२६ मघर (=मार्ग०) शुक्ला एकादशी

मोक्षदा सं० १६६७ वि०

नाभि शुद्धि के लाभ

जब दोनों नासिका बन्द हों (बुट) और श्वास ठीक न चले, घर्र–घर्र हो तो नाभि के चारों ओर हाथ से मल देना चाहिए। तुरन्त ही नासिका खुल जाती है। प्राण आसानी से चलने लगता है। नाभि के शुद्ध रहने से प्राण की गति ठीक रहती है और वीर्य रक्षा भी होती है। नाभि की अशुद्धि के कारण स्वप्न दोष और कुवासनायें उठती हैं।

६–३० प्रातः

दक्षिणा और दक्षिण

जब शहरों में अथवा वैसे भी पानी वर्षा से बहुत हो जावें और कई दिन पीछे खड़े पानी से दुर्गन्ध और कीचड़ हो जाता है, तो जब दक्षिण दिशा की हवा चलती है तो सब पानी सुखा देती है और रास्ते साफ कर देती है।

दक्षिणा भी मनुष्य के पापों का प्रायश्चित् है और पापों से शुद्ध करती और सही मार्ग मनुष्य के लिए

बनाती है। मार्ग साफ करती है।

२— नदियों में नौकायें जब दक्षिण से उत्तर की ओर आती हैं तो उन्हें बहुत कष्ट से लाना पड़ता है। दक्षिण की हवा चल पड़े तो फिर नौकायें रेल की तरह शीघ्र मंजिल पर पहुंच जाती हैं।

ऐसे ही संसार सागर के यात्री को अपनी धर्म की नौका पर चढ़कर दक्षिणा का सहारा लेना चाहिए। जिनमें कृपणता का भाव रहता है वे जल्दी संसार सागर से तरते नहीं।

११—१२—४० प्रातः ७ बजे बुधवार
२७ मघर (=मार्ग०) शुक्ला द्वादशी सं० १९९७ वि०

स्वराज्य का साधन

दृश्य १—एक दांई मुट्ठी बन्द मेरे सामने हुई और कहा—लो स्वराज्य, मेरी मुट्ठी में बन्द है। लो कैसे ले लोगे ? उत्तर मिला—दो ही उपाय हैं। एक या तो इस मुट्ठी पर लाठी चलाओं, और यह खुल जावे और तुम्हें स्वराज्य मिल जावे। मगर देखो बायें हाथ में लट्ठ बड़ा जबरदस्त है। यदि मुकाबला करने का साहस है तो

बेशक लट्ठ चलाओ, वरना और दूसरा तरीका बरतो कि इसी दांई मुट्ठी को खोल लो। जब खोलने लगा तो उसके दूसरे बांये हाथ ने अपने जोर से मेरे हाथ को परे हटा दिया। फिर खोलने लगा, फिर उसके बायें हाथ ने परे कर दिया। तो फिर जवाब आया—अपने दायें हाथ से उसकी मुट्ठी खोलो और बायें से उसके बायें हाथ को रोको।

अब इसकी समझ ही न आवें। कुछ देर बाद हल हुआ। बायां हाथ कमाई का, व्यापार का, दांया हाथ शासन का है। उसके दांये हाथ में बन्द स्वराज्य तब खुलेगा, जब (उनका) व्यापार अपने व्यापार से बन्द होगा, वरना नहीं।

ज्ञान ही शक्ति है

दृश्य २—जल का मुकाबला करना हो और उस पर सोटा चलाओ, तो छींटे तुम्हारे अपने मुख पर पडेंगे। अग्नि का मुकाबला करना हो और उस पर सोटा चलाओ, तो अग्नि की चिन्गारियां तुम्हें जलायेंगी। वायु का मुकाबला करना हो, और उस पर सोटा चलाओ, तो तुम्हारे पेट पर (सोटा) आ लगेगा। पृथ्वी पर डंडा लगाओ तो उस पर

डण्डा लग सकेगा। वह मिट्टी या धूल है—मिट्टी का माध
ो है। जल को नष्ट करना चाहो या ऊपर उठाना चाहो तो अग्नि बनकर , स्वयं दूर रहकर अपनी शक्ति को दाखिल करके उसे अलग करो और वह गैस बनकर उड़ जायेगा।

अग्नि को नष्ट करना चाहो तो जल बनकर उसमें घुस जाओ वह बुझ जायेगी। हवा से स्वयं बचना पड़ेगा, अपने आप ओट बनानी पड़ेगी।

जल से अभिप्राय एक पतित विषय विकारी लोग, दूसरे नरम पालिसी वाले, भीतर से गर्म—नष्ट करने वाले और ऊपर से मीठे अपनी ओर खींचने वाले (इन) दोनों के लिए अग्नि अर्थात् ज्ञान की आवश्यकता है। पतित भी ज्ञान से उठेगा इसके विषय नष्ट हो जायेंगे। नरम पालिसी वाले भी अपने बुद्धि ज्ञान से उडेंगे।

अग्नि से अभिप्राय एक क्रोधी, दूसरे ज्ञानी। इन दोनों के लिए भी जल अर्थात् शान्तमयी हथियार की आवश्यकता है। क्रोधी भी अपनी शान्ति से शान्त हो जाता है और ज्ञानी भी वशी हो जाता है।

वायु सबका प्राण है। सबका सहारा है। इसका

नाश नहीं किया जाता है। वह सबका सहारा है इसलिये इसके कोप से अपने को बचाना पड़ता है। ओट धैर्य है।

१६–१२–४० प्रातः ८–४५ वीरवार
५ पौष कृष्णा पंचमी सं० १६६७ वि०

व्यभिचारी को दण्ड

(१) डाक्टर हकीम वैद्य राजा हाकिम ब्राह्मण यदि अपनी प्रजा में से अपनी स्त्री के अतिरिक्त किसी भी देवी–कुमारी या विवाहिता से, उम्र में छोटी या बड़ी से व्याभिचार करते हैं तो उनको वही दण्ड होगा, जों अपनी लड़की के साथ करने में होना चाहिए, अर्थात् जिन्दा जला देना।

(२) साधु यदि किसी स्त्री से, चाहे वह उसकी अपनी पहले की स्त्री भी हो, व्यभिचार करे, तो उसे भी वही दण्ड होगा, जो अपनी पुत्री से करने पर होता है।

(३) ब्रह्मचारी यदि किसी कुमारी या विवाहिता देवी से व्यभिचार करे तो उसको वही दण्ड मिलेगा जो अपनी माता के साथ करने वाले को होता है।

(४) डाक्टर हकीम वैद्य की प्रजा उसकी चिकित्सा

कराने में लगे रोगी हैं और राजा की प्रजा उसकी सारी राज्य की जनता है। हाकिम की प्रजा उसके इलाके (=क्षेत्र) की जनता है। ब्राह्मण की प्रजा उसके शिष्य, यजमान, सेवक और साधु की प्रजा समस्त संसार।

ब्रह्मचारी के लिए समस्त स्त्री जाति माता मानी जानी चाहिए।

(५) शेष रहे सब व्यावहारिक आदि लोगों की अपनी स्त्रियों के अतिरिक्त किसी से भी व्यभिचार करने पर अपनी बहन के साथ करने के समान जानना चाहिए।

६—४० प्रातः

सिर पीठ पर आशीर्वाद का अर्थ

साधु सन्त बुजुर्ग के सामने जब कोई मस्तक सिर झुकाते हैं तो वे अपना आशीर्वाद वाला हाथ उसके सिर पर या पीठ पर ही फेरा करते हैं। इसका कारण ?

सिर तो ज्ञान और बुद्धि का स्थान है। बुजुर्ग सिर पर हाथ इसलिये फेरता है कि आशीर्वाद लेने वाले की बुद्धि पवित्र, सन्मार्ग पर चलने वाली बनी रहे। इस लोक वा परलोक के सब कार्य इस पवित्र बुद्धि से होते हैं। इसी से मनुष्य का सब मान है।

पीठ में ज्ञान तन्तु हैं, रीढ़ की हड्डी है, वीर्य का मार्ग

है जिस पर शरीर की और मन की स्वस्थता की निर्भरता है। पृष्ठ ही सबका सहारा है। 'पृष्ठं' यज्ञेन कल्पताम्' इसलिए कहा गया है। जब कोई अच्छा काम बहादुरी का करता है तो कहा जाता है—शाबाश है इसकी जनने वाली माँ को। इस रीढ़ की हड्डी में भी नाभि के मुकाबले में जनन शक्ति रहती है।

४—३० सायम्

एक के अनेक

प्रभु का नियम है कि वह भूमि में दिये हुए दाने को एक से अनेक कर देता है। फल की दशा में और बीज भी साथ। ऐसे ही जो मनुष्य शुभ कर्म करता है, एक तो उसका फल बनता है, दूसरा उसका बीज। कर्म का फल तो समझो आम के फल की तरह आम का रस है। दूसरा बीज गुठली। ऐसे कि उस शुभ कर्म को दूसरे बहुत से लोग करने लग जाते हैं। यह बहुत ही गुठलियों के समान है।

भावना का प्रभाव

ता० २०—१२—४० प्रातः ५ बजे शुक्रवार

६ पौष कृष्णा षष्ठी सं० १९९७ वि०

आज का भजन, ठीक तीन बजे उठने पर भी, ऐसा

ठीक नहीं बना। इसका कारण दृश्य के रूप में सामने आया कि–

दृश्य–जैसे दूध पर से मलाई अलग कर ली जावे और फीका दूध कोई पी रहा हो–यह दृश्य आने पर विचार किया तो रात को जो पीया गया। उसके पिलाने वाले का आकार सामने आकर यह दर्शाने लगा कि वह अपने सच्चे प्रेम को अब बनावट में विस्तृत कर रहा है कि इसी दूध की मलाई अलग करके दूध भी पिला दिया और मलाई भी खिला दी। अर्थात् दो चीजों का नाम हो जावेगा और मुझ पर साधु की अधिक प्रसन्नता होगी और मैं बड़ा प्रेमी और श्रद्धालु समझा जाऊंगा।

इस दृश्य के साथ आज भजन में प्रभाव हुआ।

स्वार्थ के कर्म

(२) कई दाने एक से अनेक तो पैदा हो जाते हैं मगर वही ही फल और वही बीज होते हैं। सब अन्न इत्यादि। तो ऐसे भी कर्म हैं जो अन्य चीजें पैदा नहीं करते। ये कर्म शुभ कर्म अपने किसी स्वार्थ के लिए होते या किये जाते हैं।

८ बजे प्रातः

गायत्री जाप बार-बार क्यों ?

गायत्री (=मंत्र) का जाप सैंकड़ो और हजारों बार और बार–बार क्यों करना चाहिए ? एक बार क्यों काफी नही? जब वह मंत्र पावन है, पवित्र करने वाला है।

उत्तर–(क) स्कूलों में छात्र पढ़ते हैं। जो तीव्र बुद्धि वाले होते हैं, वे तो एक बार पढ़ कर या सुन कर याद करके सदा के लिए याद रखते हैं। उन्हें फिर पढ़ने, याद करने की आवश्यकता नहीं रहती। पर जो मन्द बुद्धि होते हैं, उन्हें बार–बार रगड़ा लगाना पड़ता है और फिर भी भूल जाते हैं। इसलिए प्रतिदिन उस पाठ को दोहराते हैं। हम लोग भी मन्द बुद्धि हैं। अपनी आखों से नवयुवक, अति सरूप, बच्चों, बूढ़ों की, अपने सगे सम्बन्धियों की मौत को देखते रहते हैं, फिर भी मौत को भूल जाते हैं। अकाल की घटनायें, भूचाल से प्रलय और बरबादी, धनी मानियों के दिवाले और रोटी के एक–एक टुकड़े के लिए तरसते, अपनी आंखों से देखते हैं। फिर भी हमें यह डर और प्रभु की असीम शक्ति की सत्ता भूल ही जाती रहती है। तो हम कैसे अपने को बुद्धिमान कह सके हैं कि एक

बार के गायत्री मंत्र से हमारा बेड़ा पार हो जावे।

(ख) जो तलवार शत्रुओं का गला काट कर अलग फैंक देने की शक्ति रखती है, जब वह बहुत जंग लगी हो, तो वह केवल एक बार के रगड़े से कैसे तेज होकर शत्रु का मुकाबला कर सकेगी ? उसे तो सिपाही बार–बार मांजता रगड़ता है। जब उसमें उसे अपनी शक्ल (=आकृति) दीखने लग जाती है, तब वह उसे पवित्र चमकदार और तेज समझ कर, शत्रुओं के सिर काटने के लिए प्रयोग करता है। ऐसे ही हमारी बुद्धि रूपी तलवार जन्म–जन्मान्तर से मलिन, अपवित्र जंग युक्त हो चुकी हुई है। अब इस गायत्री मंत्र की रेती से बारंबार रगड़ी जाती है और जब तक इस बुद्धि में अपनी आत्मा न दीखने लगे तब तक रगड़ने की आवश्यकता रहेगी और शुद्ध, पवित्र और चमकदार होने पर अपने शत्रुओं–काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और मौत का सिर काट सकेगी।

(ग) इस सृष्टि को बने हुए लगभग एक अरब साढ़े सत्तानवैं करोड़ वर्ष हो गये। यदि अपनी आयु को मनुष्य सब समय एक सौ वर्ष का मान लें तो मानो हमारे १९७४९२५ जन्म हो चुके हैं। इतने लाखों जन्मों की मैल और जंग (=हमारी) बुद्धि रूपी तलवार को लग चुका है।

इसलिए कई जन्म निरन्तर विधिपूर्वक बड़े भारी जाप की आवश्यकता पड़ेगी।

५–१५ सायम् सम्बन्धित २–८–४० नं० १ तथा
२६–१०–४० प्रातः ८–२५ तथा ७–१२–४०

शुभ कर्म और भक्ति साथ-साथ हों

शरीर की दो प्रकार को मैल चढ़ती है—एक बाहर से कीचड़ या मिट्टी या किसी गंदगी के लग जाने से। यह तो पानी से धुल जाती है। दूसरी मैल अन्दर से निकल कर चढ़ती है पसीने आदि के कारण। यह भी पानी से साफ होती है। मगर जो विकार अन्न के द्वारा अन्दर से उत्पन्न होता है, वह विकार औषधि के अन्दर सेवन से ही निकलेगा।

मल और दोष दो मल कहलाते हैं जो शरीर को रोगी बनाते हैं। इन दोनों की सफाई से स्वास्थ्य मिलता है। ऐसे ही मन के दो मल होते हैं। एक मल दूसरा विकार।

खोटे कर्मों से तो मन में मैल चढ़ती है, मन मैला कहलाता है। विकार है मन की चंचलता। मैल तो शुभ कर्मों से जायेगी—यज्ञ दान और तप से। चंचलता जायेगी भक्ति से।

ता० २२—१२—४० दोपहर १—३० बजे रविवार
८ पौष कृष्णा अष्टमी सं० १६६७ वि०

अन्दर जागृति की आवश्यकता है

जैसे यन्त्र (=मशीन) की आवाज एक स्थान से निकली सब स्थानों में फैल जाती है, ऊपर और नीचे सात मंजिला मकानों और तहखानों में सुनाई देती है, वैसे ही गायत्री मन्त्र को जो मनुष्य बोलता है, उसके पिन्ड (=शरीर) में भी हर स्थान पर वह आवाज पहुंच जाती है, केवल अन्दर के यन्त्रों को जगाने की आवश्यकता है।

ता० २३—१२—४० सोमवार
९ पौष कृष्णा नवमी सं० १६६७ वि०

(समय नहीं दिया है—सम्पादक)

अशान्ति उत्पन्न होने के कारण

परमात्मा ने जब सृष्टि बनाई तो सब संसार में शान्ति ही शान्ति भरी थी।

ओं "द्यौः शान्ति रन्तरिक्षं शान्तिः—" जैसा कि यह

वेद का पवित्र मंत्र प्रकट करता है तो फिर अशान्ति कब पैदा हुई, किससे पैदा हुई, या किसने की और क्यों की ?

मनुष्य जब पैदा हुए तो उनसे पहले सब दृष्टि पशु और वनस्पति आदि बन चुके थे। मनुष्यों के सामने या तो जड़ देवताओं का निशान था या पशुओं का। जिन्होंने तो देवताओं की ओर देखा, वे उनके गुण धारण करने लगे और जिन्होंने पशुओं को देखा, कुत्तों का आपस में लड़ना, एक दूसरे का आहार छीनना, गदहों का हठ इत्यादि तब इन्होंने वह गुण धारण कर लिया और वे राक्षस बन गये। धीरे–धीरे इच्छा, स्वार्थ के कारण, मनुष्य में उत्पन्न हुई। अर्थात् मनुष्यों ने जब पशुओं का सा स्वभाव बना लिया, तब से (=अशान्ति.....)।

ता० २४–१२–४० प्रातः २–३० मंगलवार
१० पौष कृष्णा दशमी सं० १६६७ वि०

प्रभु शरण ही एकमात्र सहारा है

प्रजा जब राजा का साथ न देवे, राष्ट्र का नेता भी विरोधी रहे और वह प्रजा को अन्य तरफ ले जावे, तो फिर राजा क्या करे ?

उत्तर—अपने से जब तक अधिक शक्ति की शरण न लेवे तब तक कैसे सफल हो सकता है ? उसे तो फिर तख्त से उतरना और देश निकाला और कैद नजरबन्द होना ही पड़ेगा।

अर्थात् जीवात्मा रूपी राजा की इन्द्रियां रूपी प्रजा साथ नहीं देती और मन इस शरीर रूपी राष्ट्र का नेता है, वह विरुद्ध है (=राजा के) और (मन) अपनी प्रजा (इन्द्रियों) को दूर ले जाता है, इसलिए यदि अब जीवात्मा अपने से बड़ी शक्ति प्रभु की शरण न लेवे तो कैसे इन पर काबू पावे ? यदि शरण (=प्रभु की) नहीं लेता तो मनुष्य शरीर रूपी राज्य से उतारा जाकर पशु योनि में धकेला जाता है। उसे यही कैद घर है और देश निकाला जाना है।

ता० २५—१२—४० प्रातः ७ बजे बुधवार
११ पौष कृष्णा एकादशी सं० १६६७ वि०

नामकरण संस्कार

मनुष्य का नाम रखा जाता है, पशु आदि का नहीं। मनुष्य से अन्य जिसका भी नाम—कुत्ता, घोड़ा, गाय, वृक्ष

आदि का रखा जाता है, तो उसके गुण विशेष से, इसलिए मनुष्य का नाम किसी गुण विशेष के लिए रखा जाता है। यदि मनुष्य में विशेष गुण कोई ऐसा नहीं जो मालिक को भावे, जैसा पशुओं का गुण स्वामी को प्यारा होने से स्वामी उसका नाम प्यार से रखता है, ऐसे ही मनुष्य का नाम इसलिए रखा जाता है कि उसका विशेष गुण क्या है। यह गुण किसी प्राणी, योनि और देवता में भी नहीं है।

मनुष्य चाहे तो गुण देवताओं के धारण करता है, तब वह संसार में ऊंचा समझा जाता है। मगर फिर भी वह गुण और भी विशेष है, वह है भक्ति जो न जड़ देवता कर सकते हैं, न अन्य योनि वाले प्राणी। वे सब तो नियम में चलते हैं। एक मनुष्य है जो आज्ञा का पालन वा भंग भी अपने स्वतंत्र इरादा से करता है। इसलिए जो मनुष्य प्रभु की आज्ञा का पालन करता है उसका नाम अमर हो जाता है।

माता–पिता को नाम इसलिए इस भावना से रखना चाहिए कि वह सदा के लिए संसार में कायम रहे। उसके मरने के साथ नाम न मर जावे।

ता० २६–१२–४० प्रातः ४–३० वीरवार
१२ पौष कृष्ण पक्ष द्वादशी सं० १६६७ वि.

व्रतियों का कर्तव्य

यज्ञ करने के लिए व्रतियों को शरीर से पवित्रता और चरित्रता, वाणी से मधुरता और सत्यता, मन से नम्रता और उदारता बुद्धि से दक्षता और सावधानता की आवश्यकता है। यदि इनका ध्यान रखेंगे तो कार्य सफल होगा।

ता० २८–१२–४० प्रातः ६–३० शनिवार
१४ पौष अमावस्या सं० १६६७ वि.

मांसाहारी को दण्ड

यजुर्वेद अध्याय २३ मंत्र २१ में यह लिखा हुआ है कि मांसाहारी को उलटा लटका कर दण्ड दिया जावे। यह समझ में नहीं आती थी। आज इसी समय तौंसा (जिला डेरा गाजी खां–अब पाकिस्तान) यज्ञ में इस विषय में उपदेश करते सहसा प्रभु की कृपा से हल हुआ कि जैसे कसाई लोग मांस खाने वालों के लिए बकरी को उलटा लटका उसका सिर काटते हैं, इसी प्रकार उन मांसाहारियों को भी उलटा लटका कर दण्ड दिया जावे।

ता० २६–१२–४० प्रातः ३–३० रविवार
१५ पौष शुक्ला एकम् सं० १९९७ वि.

संग के अनुसार ज्ञान

जो जिसके अधिक समीप रहता है, वही उसकी दशा को अधिक जान सकता है। जो साथ न रहे वह कैसे जाने ?

मनुष्य परमात्मा के संग नहीं रहता, इसलिए उसको जान नहीं सकता। जो मनुष्य उसके साथ रहता है, वह उसके अन्दर की सब जान सकता है और जो भक्त योगी जन प्रभु के संग जितना–जितना रहते हैं, उतना–उतना वे उसे और उसकी प्रकृति के रहस्यों को जान जाते हैं।

ता० २–१–४१ प्रातः ४–१५ वीरवार
१६ पौष शुक्ला पंचमी सं० १९९७ वि.

पवित्रता का कुन्डा

(क) दृश्य–मकान के अन्दर एक मनुष्य बैठा हुआ है। दरवाजा और खिड़कियां खुली हुई हैं। बाहर से हवा का वेग आया–धूल मिट्टी भीतर आकर उसके मुख पर

पड़ने लगा। और सर्दी भी लगने लगी। शरीर कांपने लगा वह उठा और दरवाजा और खिड़कियों के दोनो पट (=किवाड़) मिला दिये। फिर हवा के वेग से खुल जाते रहे। फिर समझ आई उसे। भीतर से कुण्डे लगा दिये। बस हवा के वेग टकरा–टकरा कर वापिस हो जाने लगे और वह सर्दी से तथा धूल मिट्टी दोनों से सुरक्षित हो गया।

ऐसे ही मनुष्य जब तक अन्दर मन और बुद्धि रूपी दोनों ताकों को पवित्रता का कुण्डा न लगावे तब तक बाहर के विषय वासना रूपी हवा के वेग से वह दूषित होता रहेगा। जब मन और बुद्धि को पविंत्रता का कुन्डा लगा दे तब बाहर का विषय भीतर आ ही न संकेगा।

(ख) दोनों दरवाजे (अर्थात् किवाड़) अपनी–अपनी चुछी के साथ चाहे रह जावें मगर दोनों को अपने–अपने स्थान से त्याग करना पड़ेगा तब दोनों मिल जावेंगे। मिलने के लिए, मिलाप के लिए त्याग की आवश्यकता है और इस मिलाप को कोई वेग अलग न कर सके इसके लिए भीतर अन्तःकरण की पवित्रता की बहुत आवश्यकता है।

भाव भरना

६–१५ सायम्

मां बाप अपने-नन्हें बच्चे की गालों को चूमते हैं। एक को चूमकर थू थू कर के कहते हैं कि यह कड़वी है, तो वह बच्चा दूसरी सामने कर देता है। मां चूमतीं है तो कहती है–यह मीठी है। इस प्रकार बच्चे के साथ अनेक बार मां बाप मनोविनोद करते हैं। ऐसा खेल विनोद क्यों करते हैं ? यह स्थान वाणी की रक्षा का स्थान है। कड़वी वाणी थू थू के समान है और मीठी वाणी सबको चूमने योग्य है।

था तो यह भाव भरंना मगर माता पिता को अज्ञान होने से इसे केवल मनोविनोद ही बनाते हैं–भाव पैदा नहीं कर सकते।

ता० ५–१–४१ रात्रि ८–३० के लगभग
२२ पौष शुक्ला अष्टमी रविवार सं० १९९७ वि.

सच्चा और झूठा ज्ञान

(क) जो कर्म मनुष्य को परमात्मा के समीप नहीं कर रहा, पुरुषार्थ नहीं कहलाता। पुरुषार्थ तो मनुष्य के अन्तःकरण में पवित्रता उत्पन्न करता है। पवित्रता ही

परमात्मा की समीपता की पौड़ी है।

(ख) जो उपासना भक्ति हुई (=भेद भाव) से दूर नहीं करती, दुःख हरन अपमान में सहन और सन्तोष पैदा नहीं करती, वह भी उपासना नहीं कही जा सक़ती। केवल मनोरंजन है या मन का बहलावा है।

(ग) जो ज्ञान माया और परमात्मा के स्वरूप में, असली और नकली सुख में पहचान नहीं कराता, वह भी ज्ञान मार्ग नहीं है।

ता० ८–१–४१ प्रातः ७ बजे बुधवार
२५ पौष शुक्ला दशमी सं० १९९७ वि.

पारस=यज्ञ

(१) पारस पत्थर जो प्रसिद्ध है कि लोहे को सोना बना देता है, वह पारस पत्थर यज्ञ ही प्रतीत होता हैं। स्वार्थमय कठोर लोहा दिल को यज्ञ ही स्वर्णमय बना देता है। जिसके पास पारस हो, वह कभी निर्धन नहीं रह सकता। यज्ञ करने वाला मनुष्य कभी भी निर्धन, कंगाल और मुहताज (=पराधीन) नहीं हो सकता।

(२) यज्ञ के वास्तविक मर्म को नहीं समझा गया।

बड़े–बड़े यज्ञ जहां पर रचाये जाएं वहां के लोगों को बड़ी पवित्र भावना रखनी चाहिए। जैसे तीर्थ पर जाने के लिए ब्रह्मचर्य व्रत की आवश्यकता होती है, ऐसे ही जितने दिन, जिस ग्राम में यज्ञ होते रहें, वहां के निवासियों को ब्रह्मचर्य रखना चाहिए। मांस नशा का परहेज (=त्याग) करना चाहिए। तब यज्ञ में आकर उनको पूर्ण लाभ मिल सकता है।

ता० ६–१–४१ प्रातः ३–१५ वीरवार

२६ पौष शुक्ला एकादशी सं० १६६७ वि.

प्रकाश प्राप्ति का उपाय

नेत्र और वाणी तो बाहर से बन्द करने पड़ते हैं और प्राण और कान भीतर से। कठिन काम यही है–भीतर से बन्द करने का। जब तक ये दोनों भीतर से बन्द नहीं किये जा सकते, तब तक प्रकाश नहीं होता। आंख और वाणी के बन्द करने का उपाय सीखा नहीं जाता–बच्चा भी स्वाभाविक बन्द कर सकता है। मगर प्राण और कान के मुंदने के लिए गुरु और अभ्यास और विधि की आवश्यकता है।

अन्तःकरण के रोगों की चिकित्सा

(२) शरीर में कई रोग ऐसे होते हैं जिनके लिए पहले ही जुलाब देकर सफाई की जाती है, और फिर चिकित्सा और दवाई प्रारम्भ होती है। कई रोग ऐसे होते हैं, जिनके लिए मनफल (=दवाई) पहले और जुलाब पीछे सफल होता है।

ऐसे ही अन्तःकरण के रोग के लिए होता है। अर्थात् क्रोध अहंकार और मोह से उत्पन्न रोग के लिये पहले दवाई–प्रभु भक्ति, सत्संग, स्वाध्याय पीछे उपवास व्रत प्रायचिश्त् कर्म–जुलाब। काम और लोभ से उत्पन्न हुए पापों के लिए पहले शुद्धि (जुलाब) और फिर प्रभु भक्ति रूपी औषधि का सेवन उचित रहता है। एक व्यक्ति व्यभिचार भी करता रहे, ठगी, चोरी और मक्कारी भी करता रहे और प्रभु भक्ति भी करता रहे–उसके लिये व्यर्थ है। उसे पहले जुलाब अर्थात् कड़ा उपवास, प्रायश्चित, पश्चात्ताप, त्याग, दान आदि करने चाहिएं फिर भक्ति में प्रवेश हो। एक व्यक्ति में क्रोध, अहंकार और शरीर या प्राणों का और परिवार का मोह है, उसे कहा जाए कि पहले इनका त्याग करो, फिर भक्ति करना, तो वह भी नहीं कर सकेगा। इसलिये उसके लिए पहले ही सत्संग

और प्रभु भक्ति दवाई का काम देंगे और विवेक हो जाने पर वह त्याग भी कर सकेगा।

ता० १२–१–४१ प्रातः ३–३०' रविवार

२६ पौष शुक्ला चौदस लोहड़ी सं० १९९७ वि.

'कर्म भोग'

एक खानदान (=परिवार) साहूकार है। चार भाई हैं। सबसे बड़ा बहुत योग्य, सब मान, इज्जत, व्यवहार पर काबू रखने वाला सबकी आज्ञा का पालन करने वाला है। उसकी स्त्री सब घर पर राज्य करती है। वह बिना संतान मर गया। दूसरे का विवाह हुआ उसका पुत्र उत्पन्न हुआ वह स्वयं मर गया। बच्चा अभी छोटा है। अब इनमें पहली तो इतनी बड़ी पति की जायदाद के होते हुए भी रोटी कपड़ा खर्च लेने की ही हकदार समझी गई। उसे सब भाइयों ने खर्च भी निश्चित कर दिया। दूसरी जिसका बच्चा है, वह अपने पति (स्वर्गीय) के पूरे भाग की मालिका है। उसे कोई चूं भी नहीं कर सकता।

एक और साहूकार जिसकी सन्तान नहीं, वह मर गया। उसका कोई शरीक (भाग बंटाने वाला) भाई न होने से, उसकी स्त्री समस्त लाखों की सम्पत्ति जायदाद, धन दूकान मकान की स्वामिनी है। वह जिधर चाहे खर्च

करे कोई बाधक नहीं बन सकता। कहीं पति के नाम का यात्री गृह बनवा रही है। कहीं तीर्थ स्थान पर घाट बनवा रही है, कहीं दवा घर, धर्मार्थ औषधालय पति के नाम से। कहीं और धर्म संस्थाओं में लगा रही है। उसका बड़ा मान हो रहा है।

ऊपर लिखे अनुसार तीनों विधवा हैं। पति की छाया इन सबके शिर से उठ गई। परन्तु भोग में कितना बड़ा अन्तर है।

(क) जिस देवी ने पूर्व जन्म में पति की सेवा दिल से नहीं की केवल रोटी ही पकाती खिलाती रही, और उसके दान पुण्य में प्रसन्न नहीं होती थी, न सहमत होती थी, उसे अब इतनी बड़ी सम्पत्ति में से भी केवल रोटी ही मिली।

(ख) जिसने पति की सेवा की, उसकी सन्तान है। इस सेवा के कारण, सन्तान के कारण, (वह) सब सम्पत्ति की मालिका है पर (सम्पत्ति को) अपनी नहीं कह सकती।

(ग) जिसने पति के प्रत्येक दान पुण्य और नेक कामों में सहयोग दिया, और अपना भी इसके साथ दिया, मगर तन की सेवा नहीं की। ऐश्वर्य का जीवन

बिताया। अब वह समस्त धन की मालिका है और पुण्य कामों में पति के यश के लिए लगा रही है। सन्तान का फल नहीं। प्रभु की लीला बड़ी विचित्र है। जैसा कोई करता है, वैसा ही फल भोगता है।

ता० १३–१–४१ प्रातः ८ बजे सोमवार
१ माघ पौष की पूर्णिमासी सं० १६६७ वि:

'कर्म भोग'

एक व्यक्ति अति निर्धन है, मगर भोग उसे धनियों का सा प्राप्त है। खान पान, पहराव, निवास, परन्तु अपने आपको भोग स्वामी नहीं कह सकता। न ही वह अपनी इच्छा से उस भोग को भोग सकता है, न किसी को दे सकता है। जैसे बड़े अमीरों के घर मं रहने वाला सेवक नौकर।

दूसरा. आदमी बड़े धनी है, अपने भोग का भी मालिक है, मगर दूसरे को देने की सामर्थ्य उसमें नहीं है। जैसे बड़े सम्मिलित परिवार में छोटा भाई, जो बाहर सेवकों जैसे काम पर लगा हुआ है। तीसरा वह है जो अपने और दूसरों के भोग का मालिक बना हुआ है और सबके भोग का स्वयं प्रयोग भी कर सकता है। और दे भी

सकता है, जैसे सम्मिलित परिवारों में (बड़ा भाई) जिस पर सब निर्भर हों। वह सबके भोग का मालिक और लेन देन व्यवहार दान, पुण्य आदि अपनी इच्छा से कर सकता है। कारण– ?

(क) पूर्व जन्म में दूसरों के माल से दिल खोल कर सेवा करता रहा, अपना नहीं दिया। अमीर नौकर बना (अर्थात् इस जन्म में)।

(ख) सम्मिलित सम्पत्ति से औरों ने खूब दान पुण्य किया, परन्तु यह मन् से हृदय से सहयोग न देता रहा। इसलिये अब इस जन्म में मालिक तो बना, मगर उसका काबिज (=अधिकारी) न हुआ।

(ग) अपना भी दान किया, दूसरों से भी कराया, अब सबका मालिक बना हुआ है।

ता० १५–१–४१ प्रातः ६ बजे बुधवार
३ माघ कृष्ण पक्ष द्वितीया सं० १६६७ वि.

भावना का प्रभाव पशुओं पर भी

(१) जो लोग कुत्ते के लिए विशेष रूप से अन्न पकाते हैं, यदि वे सच्चे हृदय से बनाते और कुत्तों को

खिलाते हैं, तो उनको रोटी ले जाते समय बहुत कुत्ते घेर लेते हैं, या निश्चित स्थान पर इन्तजार में बैठे हुए होते हैं। सच्ची श्रद्धा का चिन्ह यह है कि सब कुत्तों की विद्यमानता में जिसे वह दानी रोटी डालता है, वही ही खाता है, अन्य कोई भी कुत्ता बलवान या निर्बल एक दूसरे की नहीं छीनता, लालच नहीं करता। यहां तक कि कौओं को भी डाले तो कुत्ता कौवों की रोटी भी नहीं उठाता। जो (व्यक्ति) देखा देखी, या दिखावे की खातिर या लाचारी से किसी के कहे या किसी स्वार्थ से डालते हैं। प्रथम तो उनको कुत्ते नहीं मिलते, यदि मिलते हैं तो कुत्ते आपस में लड़ पड़ते हैं। अलग–अलग उनको विश्वास नहीं होता कि हमको भी मिलेगा। जहां कुत्ते सन्तोष और विश्वास करते हैं, एक दूसरे का भाग नहीं लेते, वहां उस दानी के माल धन को भी कोई नहीं छीनता उसे भी सन्तोष और प्रभु विश्वास रहता है।

जन्म दिन गत वर्ष की पड़ताल है

(१) नाम का मफहूम (=अभिप्राय) भी यही है प्रसिद्धि। नाम का किसी का तभी होता है, और नाम की रक्षा होती है दान सेवा से। कृपण मनुष्य का नाम, नाम नहीं होता। जन्म गाठ मनाने में उद्देश्य होना चाहिए कि

वह अपना जन्म दिन क्यों मनाता है, या उसके माता पिता क्यों मनाते हैं। स्वयं मनाने वाला जैसे वैश्य साहूकार प्रति वर्ष अपनी नई बहियां रखता है वर्ष का लाभ हानि लेखा जोखा, सब चढ़ा लेता है, ऐसे ही जन्म दिन से पूर्व अपने किये कर्मों की पड़ताल कर लेनी चाहिए।

ता० २०–१–४१ प्रातः ६ बजे सोमवार
८ माघ कृष्णा सप्तमी सं० १९९७ वि.

भक्त को प्रभु की स्वीकृति

परमेश्वर का भक्त बनना बहुत दूर मंजिल है। प्रभु दरबार में भक्त उम्मीदवार स्वीकार होना भी बहुत कठिन मंजिल है। जब एक बार उम्मीदवार कोई स्वीकार हो जाए तब फिर प्रभु स्वयं उसे अपनी दात प्रदान करते रहते हैं। उम्मीदवार भी चुने जाते हैं, इतने योग्य हों। पी. सी.एस. और आई.सी.एस. के उम्मीदवार भी सहस्रों में से कोई–कोई चुना जाता है। भक्त पद पाने के लिए तो अरबों में से कोई बिरला चुना जाता है।

(२) प्रभु जिसे स्वयं वरते चुनते हैं, उस भक्त का दरजा नौकर का होता है, सेवक का। जैसे सरकारी कर्मचारी पदाधिकारी सरकार का तो नौकर होता है, किन्तु प्रजा का अफ़सर। ऐसे ही वह चुना हुआ भक्त।

प्रभु की ओर से उसे एक बिल्ला (चिन्ह) मिलता है जिसे सिद्धि कहते हैं, जैसे सरकार से ओहदेदार को अधिकार, अख्तियार मिलता है ओहदेदार सरकारी है, सरकार नहीं बन सकता, सरकार के खजाने का मालिक नहीं बन सकता, ऐसे ही वह सिद्ध पुरुष प्रभु के समस्त ब्रह्मांड का मालिक नहीं बनता। हां जो भक्त प्रभु को स्वयं कर लेवें ऐसे, जैसे कन्या वरती है को, तब वह अखिल ब्रह्मांड को अपना समझता है, अपनी जायदाद समझता है।

नौकर मुक्त नहीं होते, स्वयं वरने वाले मुक्त हो जाते हैं।

यात्रा में साथियों का कर्त्तव्य

(३) दो या दो से अधिक व्यक्ति जब यात्रा कर रहे हों, किसी एक को लघुशंका या शौच आ जाए तो उसके बैठने के साथ समीप नहीं ठहरे रहना चाहिए कुछ दूरी पर हो जाना चाहिए। जिससे शौचादि करने वाले साथी को स्वतन्त्रता हो। अपान वायु के जोर के कारण समीप वालों से लज्जा आती है। रोक लेने पर रोग हो जाता है। कभी–कभी कोई जान बूझ–कर पीछे रहने के लिए धीरे–धीरे कदम रखता है कि उसे अपानवायु ने दुःखी किया होता है। साथियों को उसे अवसर देना

चाहिए। उसके लिए साथ खड़े या कदम ढीला न करना चाहिए। उसे स्वतन्त्र होने देना चाहिए। लज्जा से अपान वायु रुक जाती है, तो कष्ट पैदा करती है।

ता० २६–१–४१ प्रातः ६ बजे रविवार

१४ माघ कृष्णपक्ष चौदस सं० १९९७ वि.

परमेश्वर की प्रथम दात

जो भक्त (=श्रद्धालु) किसी सन्त महात्मा के पास रात या दिन में ठहरे या सोवे कि उनको कष्ट न हो–मैं सेवा करूंगा या इस भाव से रहे कि मुझे कुछ प्राप्त हो तो उसे आवश्यकता है सावधान रहने की–कि

(क) दिन में बेपरवाह न बैठें, रात में चिन्ता से सोवे। जब भी सन्त जागें, भक्त सावधान हो, जिससे सन्त की उचित आवश्यकता को पूरा कर सके। दिन में भी बिना उनके बुलाये, या कहे, उनकी आवश्यकता के स्वयं देख समझकर पूरा करे। यह है सेवा भाव। यदि रात को ऐसा (निश्चित) होकर सोवें कि उसे पता ही न लगे कि सन्त कब जागे, कब अपने कार्यों से निवृत्त हुए, उन्हें कोई कष्ट अनुभव हुआ या सब कार्य आसानी से हो गए और दिन को भी उन्हें उठ कर स्वयं अपनी आवश्यकता पूरी करनी पड़े और सेवक भक्त देख लेने पर उठे, तो वह भक्त (=सेवक) सच्चा श्रद्धालु नहीं होता।

(ख) कुछ प्राप्त करने की नीयत वाला तो सी. आई.डी. की तरह चौकन्ना रहे। उनकी सब छोटी बड़ी चेष्टायें—जागने, उठने, खाने पीने और बोलने को सदा ध्यान में रखे कि क्या और कब ध्यान और भजन में लगते हैं। तब उसे प्राप्त हो सकता है, अन्यथा नहीं। किसी के देने से कुछ गुण नहीं मिल सकता। गुण अवगुण कोई दे नहीं सकता। स्वयं धारण करने होते हैं। परमेश्वर की प्रथम दात भक्त के लिए ब्रह्ममुहूर्त में जागना और कुरूपता (अर्थात् ऊंघना) इस समय नींद का प्रभाव (समझना चाहिए)।

ता० २७—१—४१ प्रातः (समय नहीं दिया) सोमवार
१५ माघ व्रत अमावस्या सं० १९९७ वि.

व्यक्ति शोक से ग्रस्त कब होता है

जिस मनुष्य के मित्र सहयोग नहीं देते और शत्रुओं का उस पर दबाव है, उनके सदा अधीन रहता है, उसका जीवन भय और शोक का जीवन रहता है। वह किसी से भलाई या पूरा हित नहीं कर सकता। उसे शत्रुओं की अधीनता से, मित्रों से धोखा करना पड़ता है। इसलिये वह मित्रों से सहायता नहीं प्राप्त कर सकता।

काम क्रोध लोभ मोह अहंकारादि शत्रुओं के अधीन

होने से सद विचार सदाचार रूपी मित्रों से धोखा करता है। धर्म रूपी मित्र से धोखा करता है। इसलिए धर्म उसकी सहायता नहीं करता। धर्म से भागा हुआ मनुष्य भय और शोक में ग्रस्त रहता है।

१ बजे पीछे दोपहर

परमात्मा कृपा उन्नति कारक

जमा हुआ घी अग्नि पर रखा जाए तो अग्नि निचले भाग के घी को जब ताप लगाकर पिंघलाती है तो उसे तुरन्त ऊपर के जमे हुए घी पर चढ़ा देती है।

परमात्मा देव के संग से जो कठोर हृदय पिंघल जाता है, वह तुरन्त सबके ऊपर–ऊपर चढ़कर सबको दीखने लगता है।

२. भक्त के सिर में गर्व और चिन्ता नहीं। हृदय में कठोरता और दुई नहीं रहती। तब क्या रहता है ? सिर में नम्रता और विश्वास, हृदय में प्रेम और भक्ति। भक्त का हृदय कठोर नहीं अपितु पक्का (दृढ़) होता है।

ता० २८–१–४१ प्रातः ३–३० बजे मंगलवार
१६ माघ शुक्ला एकम् सं० १६६७ वि.

प्रभु कृपा उन्नति का मूल

जिनके भाग परमात्मा अच्छे बनाता है, उन्हीं को

दोनों तरीकों से, जिसमें भी उनकी उत्पत्ति हो, उन्नति करता है। निषेधात्मक (Negative) से भी और विध्यात्मक (Positive) से भी।

एक व्यक्ति निर्धन के घर उत्पन्न हुआ यतीम (=अनाथ) है, उसका सहारा कोई नहीं। कोई उसे अपने आश्रय में नहीं लेता, तो भी प्रभु उसके जीवन को दुःख और गरीबी में सहन शक्ति और समय के अनुकूल बुद्धि देकर, उसे उन्नत करते हैं कि वह पुरुषार्थी और तपोमय जीवन का और निष्पाप जीवन वाला बन जाता है। अनुभवी और तजुर्बेकार हो जाता है।

दूसरा सब प्रकार के सुख के सामान में पैदा होता है, तो उसे अच्छे संग मिलने से पापों से बचाता रहता है और ऊंचा जीवन कर देता है।

६ बजे प्रातः (सम्बन्धित ता० २२—२—४१)

माता और गुरु दोनों आवश्यक

(मैं) यत्न तो मनुष्य को मां सिखाती है भोग के लिए, मगर 'मैं कौन हूं' यह सिखाता है बताता है गुरु मोक्ष के लिए।

ता० २६–१–४१ प्रातः ५–३० बजे बुधवार
१७ माघ शुक्ला द्वितीया सं० १९९७ वि.

माता पिता की आशीर्वाद कब मिलती है

जो पुत्र अपने माता पिता के चरणों में मस्तक तो टेकता है, परन्तु उसे इस काम में पहले हृदय में उमंग, उत्साह और आह्लाद उत्पन्न नहीं होता, तो समझो माता पिता की आशीर्वाद उसे नहीं मिल रही। माता तपता की हार्दिक आशीर्वाद उसे ही मिलती है, जो हृदय से, स्वाभाविक हृदय से मस्तक टेकता है। ऐसे मनुष्य को माथा टेकने के लिए बड़ी लालसा होती है जो उसकी प्रसन्नता का कारण होती है। यही चिन्ह है ?

२. **'कर्म भोग'**

प्रश्न–वृक्षों में जब जीव है, और मनुष्यों को अपने भोग के लिए उसे काटना पड़ता है–तो यह हिंसा नहीं है? और खेती के लिए जो जुताई करते समय अनेक जीव मर जाते हैं

उत्तर–पशु की योनि तो भोग योनि है। जो आहार उसके लिए प्रकृति से निश्चित है, उसे उसके खाने में दोष नहीं लगता। शेर प्राणियों को फाड़ कर खाता है। उसे कोई दोष नहीं, इसलिए कि वह भोग योनि में है।

मनुष्य की योनि उभय योनि है। अर्थात् कर्म योनि और भोग योनि तो प्रकृति से निश्चित भोग को प्राप्त करने में इसे भी हिंसा नहीं लगती। 'जीवो जीवस्य भोजनम्' यह प्रकृति अनुसार ही ठीक है। यदि मनुष्य भक्ष्य पदार्थों को छोड़ कर अभक्ष्य को प्राप्त करने में हिंसा करता है, तो उसे पाप लगता है, क्योंकि उसने प्रकृति के नियम के विरुद्ध किया है। पशु जिसे एक बार काटता है, उसे पैदा नहीं कर सकता। परन्तु मनुष्य अपने यज्ञ कर्म से वनस्पति और औषधि बोता रहता है, इसलिए कर्म इस भोग का प्रायश्चित् बन जाता है।

सर्वाधार प्रभु

८ बजे रात

प्रश्न–परमेश्वर के गुणों का ध्यान कैसे किया जाए? जैसे कि वह सर्वाधार है, तो इस गुण को कैसे भान किया जावे ?

उत्तर–परमेश्वर सर्वाधार है, सर्व में मैं स्वयं भी आ जाता हूं। इसलिए मुझे प्रभु के इस गुण को अपने भीतर देखना चाहिए, बाहर नहीं।

मेरा शरीर या पिन्ड सारे का सारा और उसके

अंग–इन्द्रियां, अवयव, रग नस, नाड़ी प्राण के आश्रय चलते हैं। प्राण ही इन संबका आधार है। बाहर भी समस्त ब्रह्मांड का आधार प्राण है और प्रभु प्राण स्वरूप हैं। इसलिए वह सर्वाधार हैं। ऐसे बार–बार विचार करने से प्रभु की सर्वाधार सत्ता सही–सही भान होने लगेगी।

ता० ३०–१–४१ दोपहर पीछे १–३० बजे वीरवार
१८ माघ शुक्ला तृतीया सं० १९९७ वि०

प्रतिज्ञा भंग का फल

मनुष्य दो प्रकार से प्रतिज्ञा करता है–एक तो किसी अवगुण के त्याग की प्रतिज्ञा करता है, दूसरा किसी शुभ कर्म के करने की प्रतिज्ञा करता है। प्रतिज्ञा का भंग है तो पाप, परन्तु दोनों का कारण अलग–अलग होने से फल भी अलग–अलग प्रकार का होता है।

अवगुण के त्याग की प्रतिज्ञा का भंग होना मानसिक निर्बलता है और यह लोभ वृति से होता है। शुभ गुण (=कर्म) की प्रतिज्ञा का भंग प्रमाद आलस्य से होता है जो मोह वृत्ति से सम्बन्ध रखता है। पहले में बुद्धि मलीन और दूसरे में मन मलीन होने का फल मिलता है।

सर्व शक्तिमान और पूर्ण बुद्धिमान

रात्रि लगभग ६--३० बजे

सर्व शक्तिमान (कादिर मुतलंक) वही हो सकता है, जो पूर्ण बुद्धिमान (अकल कुल) हो। जो पूर्ण बुद्धिमान न हो वह सर्व शक्तिमान नहीं हो सकता। इसलिए यह कहना कि, यदि परमेश्वर सर्व शक्तिमान है तो, क्या वह अपने जैसा और (=दूसरा) खुदा बना सकता है ? या चोरी कर सकता है? या सूर्य को पश्चिम से निकाल सकता है ? अपने बंधे नियम और अपनी पोजीशन के विरुद्ध काम करना बुद्धि हीनता है। चूंकि परमात्मा अकल कुल (पूर्ण बुद्धिमान) है, इसलिए वह ऐसा क्यों करे ? जब कि एक बुद्धिमान मनुष्य भी अपनी बुद्धि के विरुद्ध करना अपना अपमान समझता है।

ता० ३१—१—४१ प्रातः ६ बजे शुक्रवार.

१६ माघ शुक्ला चतुर्थी सं० १६६७ वि०

कार्य अनुसार आहार

जो मनुष्य जितना आहार मूल्यवान और अधिक खाता है, यदि वह उसके अनुसार उतना काम नहीं करता, तो वह पाप खाता है, उधार ऋण उठाता है। यदि अपने शरीर या मस्तिष्क से कार्य अधिक लेता है,

और उसे आहार उतना पूरा नहीं देता तो वह चोरी करता है, कंजूस है। (वह) दुःख सहेगा, उसे भी पाप लगेगा।

वरण और समर्पण में अन्तर

(२) जिस कन्या की मंगनी हो गई अर्थात् उस ने वर ले लिया है किन्तु अभी रहती है अपने माता पिता के घर में और उन्हीं पर निर्भर है, तब तक उसका पति न उसका मुख देख सकता है, न उसे दर्शन देता है, न ही उसे अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाता है। जब भी कन्या अपने आपको पति के अर्पण कर देती है और उसकी शरण में चली जाती है, तब से पति की समस्त सम्पत्ति की मालिक (=स्वामिनी) बन जाती है और पति सब प्रकार का उसका जिम्मादार (=उत्तरदायी) हो जाता है।

ऐसे ही भगवान का भक्त जब तक भक्त है—माया पर भरोसा भी रखता है पर केवल यही कहता है कि प्रभु ही मेरा मालिक है, तब तक उसे भी कुछ प्राप्त नहीं होता।

सर्वश्रेष्ठ दात (=प्राप्ति) और दान

(३) दानों में सबसे श्रेष्ठ और मूल्यवान दान उन

वस्तुओं का है, जो बिना किसी मूल्य के, अमूल्य वस्तुयें प्रभु से दात में मिलती हैं।

सबसे प्रथम दात प्राण दान, द्वितीय नाम दान (वाणी–उपदेश) तृतीय श्रवण–श्रुति दान–कानों का, चतुर्थ रूप दान आंख का–अर्थात्–

(१) अपना श्वांस श्वांस प्रभु चिन्तन में लगे, और धर्म के लिए प्राण बलिदान होवे।

(२) प्रभु नाम लोगों को जपाना, वेद पढ़ना पढ़ाना, सत्य के लिए बलिदान होना।

(३) सत्संग लगवाना, उपदेश करना।

(४) मित्र दृष्टि–प्रेम दृष्टि से सबको देखना। प्रेम दान देना।

२१६०० (इक्कीस हजार छः सौ) श्वांस मनुष्य प्रतिदिन प्रभु से बिना मूल्य (मुफ्त) लेता है। एक वर्ष भर में २१६००×३६५=७८८४००० श्वांस लेता है। यदि प्रतिदिन कम से कम १८०० श्वांस प्रभु अर्पण नहीं करता तो कृतघ्न बनेगा। जैसे एक दाना भूमि के अर्पण होता है, तो वह बढ़ाकर सैंकड़ों कर देती है, ऐसे ही एक श्वांस प्रभु अर्पण होने से सैंकड़ों श्वांस आयु के रूप में पाता है।

ता० १-२-४१ प्रातः ५ बजे शनिवार
२० माघ शुक्ला पंचमी (बसंत पंचमी) सं० १६६७ वि०

बसंत सन्देश

बसंत पंचमी का पर्व २ (दो) सन्देश देता है—एक तो—अब मौसम पतझड़ है, शिशिर ऋतु प्रारम्भ हो गई। प्रकृति अब वृक्षों के पत्ते झाड़ रही है तो मनुष्यों को भी ध्यान रखना चाहिए कि इस ऋतु में गृहस्थ न करे—शक्ति वीर्य अधिक नष्ट हो जावेगा। उतराई की ओर यदि मनुष्य स्वयं भी तीव्र कदम रखने लग जाएं तो शीघ्र नीचे गिर जायेगा। मौसम चूंकि पतन का है, अतः गृहस्थी मनुष्य यदि गृहस्थ करेगा, वीर्य अधिक निकलेगा, तो निश्तेज हो जावेगा।

बसन्त पंचमी पर लोग प्रकृति का अनुकरण करते हैं—पीले कपड़े इसलिए बनाते हैं कि रंग बसन्त सूर्य का है। और सूर्य आदित्य कहलाता है, इसलिये ब्रह्मचर्य का आदेश करती है।

दूसरे बसन्त ऋतु प्रसन्नता की आशा दिलाती है, जिसमें ब्राह्मण का बालक विद्या ग्रहण का आरम्भ करता है। साधक योग में प्रवेश करता है। पुत्रेष्टि यज्ञ भी इसी ऋतु बसन्त में हुआ करते हैं।

ता० २–२–४१ प्रातः ४–३० बजे रविवार
२१ माघ शुक्ला षष्ठी सं० १६६७ वि०

गुण, अवगुण, दुर्गुण

(१) गुण अनेक हैं। मनुष्य सर्व गुण सम्पन्न नहीं हो सकता। गुण तो केवल एक ही पूर्ण हो जाए तो उससे उसका नाम प्रसिद्ध हो जाता है। परन्तु अवगुण एक भी रह जाए तो कुख्यात करने वाला होता है। इसलिए सब अवगुणों का त्याग करना चाहिए।

दो रुकावटें हैं–एक अवगुण, दूसरा दुर्गुण। अवगुण तो मनुष्यत्व से नीचे ले जाने वाले कार्य हैं। दुर्गुण प्रभु से दूर करने वाला है।

वह दुर्गुण तीन प्रकार का है-

(क) मनुष्य जैसा कहता है वैसा करता नहीं। इसके मन और वचन में, वचन और कर्म में अन्तर है।

(ख) जितना सुनता है, उतना समझता नहीं।

(ग) जैसा देखता है वैसा मानता नहीं।

१०–३० प्रातः

अपने अवगुण और दुर्गुण के अध्ययन का तरीका साधक के लिए यह है कि अपने अवगुण की तुलना अवगुण भरे मनुष्यों से न करे बल्कि पशु से करे अर्थात्

जैसे शराब पीता है तो देखे कि गाय, घोड़े आदि शराब नहीं पीते, मैं तो इनसे भी गिर गया। या कोई मांस खाता है, तो देखे कि कुत्ता, भेड़िया, चीता मांस खाते हैं। यह तो मुझमें पाशविक वृत्ति है इत्यादि।

अपने दुर्गुण की तुलना अपने महापुरुषों की जीवनी से करे जिससे उसे अपने महापुरुषों के चरण चिन्ह पर चलने की प्रेरणा मिल सके।

ता० ३–२–४१ दोपहर (समय नहीं दिया) सोमवार
२२ माघ शुक्ला सप्तमी सं० १९९७ वि०

सच्चे और दिखावटी सेवक में अन्तर

जिन लोगों में सेवा करने का स्वाभाविक संस्कार होता है उनका चिन्ह यह है–

(१) वे बिना कहे, अपने आप, सेवा का कार्य, जहां भी उनकी आंखों के सामने हो, करने लग जाते हैं।

(२) उस सेवा की आवश्यकता या कमी को पूरा करने के लिए, यदि वह वस्तु उनके अपने घर से, उनके अपने पास से मिल सकती है, तो स्वयं ही जा कर पूरी कर देते हैं। दूसरे से नहीं मांगते, चाहे वह सेवा का कार्य किसी और की तरफ सी भी हो, या किसी सभी संस्था का हो।

(३) जो वस्तु उनके अपने पास से, घर से मिलने वाली नहीं होती तो वे अपने आप जाकर दूसरे से मांग लाते हैं, किसी अधिकारी को कहने या उनको मंगवा देने के लिए नहीं कहते। इसके विरुद्ध, जिनमें सेवा का स्वाभाविक संस्कार नहीं, लाचारी से, या देखा देखी या कहने से सेवा करने वाले होते हैं, वे अपने घर से कभी एक पाई का भी कष्ट नहीं उठाते। अपनी वस्तु को अस्थायी प्रयोग में भी कभी नहीं लाना चाहते। जिनकी ओर से सेवा का कार्य है, उन्हीं पर सवार रहते हैं। अर्थात् केवल तन ही लाचारी से उपस्थित रखते हैं।

ता० ४–२–४१ प्रातः ५ बजे मंगलवार

२३ माघ शुक्ला अष्टमी सं० १६६७ वि०

प्रार्थना के भेद

(१) **उत्तम सात्विक प्रार्थना**–प्रभो ! आप अपनी इच्छा (रजा) पर राजी रहना सिखाओ, कि सच्चे हृदय से कह सकूं–तेरी इच्छा पूर्ण हो।

(२) **मध्यम सात्विक प्रार्थना**–प्रभो ! मुझे बल और बुद्धि दो कि मैं तेरी इच्छा के अनुकूल इनका सदुपयोग करूं।

(३) **अधम सात्विक प्रार्थना**–प्रभो ! मुझे बल और बुद्धि दो कि मैं संसार की सेवा कर सकूं।

(४) **उत्तम सात्विक राजसिक प्रार्थना**–प्रभो ! मुझे बल और बुद्धि दो कि अपना और संसार का भला कर सकूं।

(५) **राजसिक प्रार्थना**–प्रभो ! मुझे शक्ति और मति दो कि मैं संसार से दुष्टता का नाश और श्रेष्ठों की सेवा और रक्षा कर सकूं।

(६) **शेष सब प्रार्थनायें**–जो अपने लिए की जावें, तामसिक हैं।

सौभाग्यवान गृहस्थी

प्रातः १० बजे

जिस गृहस्थी को चार वस्तुयें नित्य प्रति प्राप्त हों, वह बड़ा सौभाग्यवान होता है।

(१) एकान्त में प्रभु पूजा से आत्मा की पवित्रता।

(२) मन्दिर में सत्संग से इन्द्रियों की पवित्रता।

(३) घर में अतिथि सत्कार से मन की पवित्रता।

(४) दुकान पर व्यवहार से शरीर की कमाई की पवित्रता।

पितृ भक्ति की शिक्षा

प्रातः ११–३० बजे

माता पिता का अहसान (=कृतज्ञता), सहनशीलता सेवा का उस समय ठीक–ठीक साक्षात् होता है, जब किसी नवयुवक की अपनी सन्तान हो जाए और फिर उस संतान के लिए जो लाड़ हठ जिद, मांग, दुःख बीमारी में सेवा की सहनशक्ति अपने आपको करनी पड़ती है। यदि मनुष्य इसके साथ यह अनुभव करने लग जावे कि ठीक यही दशा मेरे बचपन की मेरे मां बाप की छाया में रही होगी तो उसमें पितृ भक्ति अवश्य भर जायेगी।

ता० १५–१२–५३ सुन्दरपुर कुटिया

आचार्य जी का जन्मदिन ६८ वां मना रहे हैं। ६७ वां ६६ वाले के दरम्यान में क्या पड़ताल की। साधनायें तो अनेक हैं जो साधन हो वह कितना अन्दर आया, जमा किया। सेवा साधन है तो साध्य के गुण कर्म स्वभाव सेवक में आ जाने चाहिएं। दान साधन है तो दया के साथ नम्रता आ जानी चाहिए। यज्ञ साधन है तो निस्वार्थता और न्याय आ जाना चाहिए। कीर्तन साधन है कीर्ति प्रभु ही की प्यारी लगे, अपनी नहीं। यात्रा साधन है तो मन

में यत और जत का प्यार और आदर हो। तप साधन है तो सत्य ज्ञान, सहनशक्ति, अक्रोध समा जावे। जप साधन है तो मन्त्र का अर्थ आचरण में आने लगे। स्वाध्याय साधन है तो अपनी कमजोरियां दूर भगायें। ज्ञान उपदेश साधन है तो जो कहे उसे जानता मानता और करता हुआ दिखाई दे।

ता० २८-८-५४ झज्जर–रात्रि सोने से पहले मैं अपने स्थान पर बैठा था। सेठ मथरादास जमींदार लैया वाले और डा० बलदेव जी (कोट अद्दूवाले) भी बैठे थे। पुत्री रामप्यारी और रामदेवी जो दिल्ली से यज्ञ में आईं थीं, ला० सानूरम (कोट अद्दूवाले) की घर वाली ने ला० लोकनाथ जी और रामप्यारी की सोने की जगह अपने मकान पर बना रखी थी। उनके लिए दूध भी ले रखा था सत्कार के लिये क्योंकि वे कोट अद्दू (=पाकिस्तान) में बहुत काल इकट्ठे एक मकान में रहते थे। ला० लोकनाथ और रामप्यारी ने दूध की क्षमा मांगी और कहा हम नहीं पिया करते। उसने बहुत मिन्नत की। लोकनाथ ने कहा अच्छा जमा देवें प्रातः अगर इच्छा हुई या जरूरत हुई तो दही खा लेंगे। ऐसी कई एक बातें हुईं।

मैंने कहा–'आदर देना चाहिए'। वह समय गुजर गया। मैंने समझाया (ला० लोकनाथ को) कि लोग

आपका मान करते हैं, अपने साथ बिठाना सुलाना चाहते हैं। आप बेपरवाही से बात करते हो। यह मर्यादा नहीं। दूसरों के भावों का आदर करना चाहिए जो प्रेम प्यार बढ़ाना चाहते हैं एक ही विचार को देखकर। फिर उनसे बेपरवाही अच्छी नहीं होती। यह बात मैं उनको रोहतक वाली देवियों के प्रेम प्यार की कहा रहा था। वे भी यज्ञ पर आईं थीं। इधर दूध की बात हो गई।

फिर जब वे (मेरे) सोने के बाद (बहुत देर बाद) ला० सानूराम जी के मकान पर जाने लगे तो उसने कहा—दूध के सम्बन्ध में फिर कोई बात हुई तो अकस्मात् मेरे मुंह से निकला कि 'हम तो सब जगह पी लेते हैं, आप ऐसे इन्कार कर देते हो'। झट सेठ मथरादास ने कहा—कि आप तो महापुरुष हैं, महात्मा हैं, क्या आप सच कह रहे हैं ? आपने तो एक दिन भी नहीं पिया जब से आये हैं। मैंनें उनको उत्तर दिया कि मैं सर्दी में गर्म पानी और गर्मी में सर्द पानी रात में इसी भाव से पिया करता हूं और उन सबको मालूम है और इन सब को भी कई बार पिलाकर दिखाया तो इन्होंने भी दूध का स्वाद प्रतीत किया। वह (=सेठ मथरादास) चुप हो गये। वह बहुत सज्जन और गंभीर सज्जन थे। रात को मैं सो गया।

२६—८—५४ पूर्णाहुति इतवार (प्रायश्चित पाप) लगभग

ढाई बजे मैं नमस्कार और प्रार्थना करने लगा, तो जब अपने महापुरुषो को नमस्कार करने लगा तो सेठ मथरादास जी (गवाह के रूप में या मुद्दई) खड़े थे। मुख से तो कुछ न बोले। पहले तो महापुरुषों ने मुख मोड़ लिया फिर ऐसा प्रतीत हुआ कि मुझे रात की मिथ्या या असत्य बात का दण्ड देना चाहते हैं। यद्यपि मेरे प्रेमी जानकार तो मेरे पानी को दूध समझते हैं, वह भी देहली वाले या दूर वाले कोई–कोई, मगर गैर या सब प्रेमी तो नहीं जानते। इसलिये दूसरों की नजर में अज्ञान में यह असत्य बोल ही था। डेढ़ मास मौन, और उपदेश का अधिकार नहीं।

पूर्णाहुति पर गायत्री का उपदेश करना था, यह विषय रह गया था।

संकेत–फरमाया कि 'गायत्री का उपदेश वह कर सकता है जिसकी वाणी सत्य बोलती हो। तुमने असत्य बोल दिया, इसलिए अधिकारी नहीं।' सेठ मथरादास गायब हो गये। फिर जब मैंने नमस्कार की (=महापुरुषों को) और दण्ड खुशी से स्वीकार किया तो पोले–पोले दो बुज्जे) (=हलके से चपत) भी मेरे मुंह पर लगे। तब मुझे बहुत लज्जा आई और सुचेत हो गया कि मुमकिन है ऐसी मिथ्या बात कई मौकों पर हो ही जाती होगी, बहुत सावधान रहना है। दृढ़ सत्य आचरण जिसके लिए रोज

प्रार्थना करता हूं, अब आज से एक बड़ी भारी समस्या हल हो गई।

कानपुर से एक सज्जन धर्मपत्नी सहित (डा० किशनचन्द जी का साला) गायत्री उपदेश लेने आए थे उनको करीब पांच बजे प्रातः जब वे आये, कह दिया कि मुझे अधिकार नहीं रहा। डेढ़ मास के बाद देखा जावेगा।

यज्ञशाला में जाकर मैंने उपदेश न किया और अपना पाप अपराध 'ओं यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यादिन्द्रिये। यदेनश्चकृमावयमिदं तदवयजामहे' (यजुर्वेद ३–४५) मन्त्र पढ़ कर प्रकट कर दिया और मौन होने के लिये सबको ऐलान कर दिया।

यज्ञोपवीत (संस्कार) जो बच्चों के हुये वे भी आचार्य जी से अर्ज की यह आप उपदेश गायत्री का करें, मुझ अधिकार नहीं। सारी सभा में ऐसी प्रार्थना करके आशीर्वाद और सहयोग मांगा। फिर दूसरे दिन सोमवार (ता० ३०) प्रातः से मौन हो गया। प्रभुदेव सहायक रहें, सत्य की प्रतिज्ञा का पालन कर सकूं।

।। ओ३म् शम् ।।

आभार

महान उपयोगी इस पुस्तक का यह संस्करण महात्मा व्यास देव जी अधिष्ठाता वैदिक भक्ति साधन आश्रम की प्रेरणा से श्री ऋषि कुमार जी गुप्ता दिल्ली निवासी तथा श्री प्रियवर्त जी गुप्ता सूरत निवासी के सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है। प्रकाशन विभाग इस पवित्र दान को पाकर जन सेवा में अग्रसर होकर हार्दिक अभिनन्दन करता है। परम पिता परमात्मा इन दोनों परिवारों पर अपनी छत्रछाया हमेशा बनाए रखे यही हमारी कामना है और पाठक गण भी इस पुस्तक से पूरा-पूरा लाभ उठाएंगे।

प्रकाशन विभाग,
वैदिक भक्ति साधन आश्रम
आर्य नगर रोहतक।